संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२६ ● : अंक १५ ● ११ अप्रैल २०२४ (गुरुवार) चैत्र शुक्लपक्ष तृतीया सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्: १६६०८५३१२५

समाज सुधार एवं युवाओं के चरित्र निर्माण में आर्य समाज की मुख्य भूमिका

–देवेन्द्रपाल वर्मा

आर्य समाज जी.टी.रोड, खतौली का 112वाँ वार्षिकोत्सव व नव संवत्सर समारोह का भव्य समापन

महर्षि दयानन्द सरस्वती की २००वीं जयन्ती, आर्य समाज स्थापना दिवस व नवसंवत्सर के शुभ अवसर पर आर्य समाज जी. टी. रोड, खतौली, मुजफ्फर नगर के ११२वें वार्षिकोत्सव में दिनांक ०६ अप्रैल, २०२४ को मुख्य अतिथि के रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी ने उपस्थित आर्यजनों को सम्बोधित करते हुए कहा कि ''आर्य समाज का इतिहास आन्दोलनों का रहा है वह चाहे स्वतंत्रता आन्दोलन हो चाहे हैदराबाद के निजाम के खिलाफ आन्दोलन हो, चाहे शुद्धि आन्दोलन हो, चाहे समाज सुधार का आंदोलन रहा हो, हर आन्दोलन की शुरूआत आर्य समाज ने की और उसे निर्णायक मोड़ तक लड़ा भी। समाज सुधार एवं युवाओं के चरित्र निर्माण में आर्य समाज की मुख्य भूमिका रही है। महर्षि की इच्छानुरूप स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हरिद्वार में गुरूकुल की स्थापना बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए की थी। उसके पश्चात देश भर में सैकड़ों गुरूकुल खुल गये। गुरूकुल काँगड़ी के स्नातकों की एक अलग पहचान रही है।

समाज सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत आर्य समाज सन् २०१६ से सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में शराब बंदी आन्दोलन भी पूरे उत्तर प्रदेश में योजनाबद्ध तरीके से, हर जनपद की समाजों के सहयोग से चलाया जायेगा।

इससे पहले आचार्य प्रमोद कुमार जी के ब्रह्मत्व व गुरूकुल की ब्रह्मचारिणियों के यज्ञ के महत्व पर विस्तृत प्रकाश डाला। श्री घनश्याम प्रेमी, बहनसुकीर्ति आर्या व श्री भूपेन्द्र आर्य जी ने अपने सुमधुर भजनों के माध्यम से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया। प्रधान श्री धर्मेन्द्र तोमर ने सभी आगन्तुकों को स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया। समारोह का सफल संचालन मंत्री श्री जसवीर सिंह राणा ने किया।

शराब बंदी आन्दोलन चला रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य युवा वर्ग महिलाओं व बच्चों की रक्षा करना। आज शराब के कारण युवाओं का भविष्य चौपट हो रहा है। देश के कर्णधारों को सरकार द्वारा पोषित मयखाने गर्त में धकेल रहे हैं। एक आम आदमी अपनी दिनभर की कमाई शराब में उड़ा कर महिलाओं व बच्चो की दुर्दशा तो करता ही है उन्हें यातना भरा जीवन जीने को मजबूर कर देता है। सरकार एक तरफ मद्यनिषेध विभाग खोलकर ''शराब पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक'' बताती है तो दूसरी तरफ गली मोहल्ले में शराब की दुकानें खोलकर तगड़ा राजस्व कमाती है। शराब के कारण ही आये दिन दुर्घटनायें व अपराध होते हैं। जिसमें कहीं ज्यादा जान-माल की हानि होती है।

आखिर प्रधान मंत्री जी के राज्य गुजरात में पूर्ण शराब बंदी सफलतापूर्वक लागू है तो पूरे भारत में उसी तर्ज पर शराब बंदी क्यों नहीं हो सकती। अब आर्य समाज चुप बैठने वाला नहीं।

सास्वर मंत्र पाठ के द्वारा श्री धर्मेन्द्र तोमर, श्री सुरेन्द्र चौधरी, श्री दयानन्द आर्य सभी सपत्नीक यजमानों ने देव यज्ञ सम्पन्न किया। तत्पश्चात् ओ३म् ध्वजारोहण किया गया।

समारोह में स्वामी यज्ञ मुनि जी व स्वामी विश्वानन्द जी ने आर्य, अरविन्द आर्य प्रधान जगदीश आर्य, अशोक शर्मा, शोभराज विश्वकर्मा, बादल अभिमन्यु, अनुराग चौधरी, युवराज वासु आर्य, ओमराज, अभयराज सहित सैकड़ों धर्मप्रेमी नर-नारी उपस्थित थे।

●●●

वेदामृतम्

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां, चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा, भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।

ऋ. १०.१२५.३

हे मनुष्यो ! यदि तुम मेरा परिचय जानना चाहते हो तो सुनो। मैं राष्ट्री हूँ, विश्व की सम्राज्ञी हूँ, अधीश्वरी हूँ। मैं ही समस्त ब्रह्माण्ड में शासन कर रही हूँ। मैं ही वसुओं में संगम करानेवाली हूँ। ऐश्वर्यों को अपने अन्दर बसानेवाले सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि पिंड ही वसु कहलाते हैं। इनमें जो एकसूत्रता दिखाई देती है, परस्पर सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है, उसे लानेवाली मैं ही हूँ। मेरे ही रचे नियमों के अनुसार पृथिवीलोक सूर्य, अग्नि एवं पवन के माध्यम से अपने जलों को आकाश में पहुँचाता है, और आकाश उन जलों को पुनः पृथिवी पर बरसा देता है। इस प्रकार आपस में उपकार्योपकारक-भाव चलता रहता है। मेरे ही नियमों के अनुसार सूर्य की आकर्षणशक्ति से खिचे हुए पृथिवी आदि पिण्ड सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। मेरे ही नियमों में बँधे हुए ये सब पिण्ड एक-दूसरे पर भी अनुग्रह कर रहे हैं और एक-दूसरे को अपनी ओर खींचते हुए बिना आधार के आकाश के मध्य में स्थित हैं। मैं 'चिकितुषी' हूँ, ज्ञानवती हूँ, मुझे विश्व के कण-कण का ज्ञान है और मैं वेदज्ञानमयी भी हूँ तथा अपनी सन्तानों के कल्याणार्थ उन्हें वेद का ज्ञान देती हूँ। मैं 'यज्ञियों में प्रथम' हूँ, पूजनीयों में सर्वाधिक पूज्या हूँ। जो भी माता, पिता, आचार्य, अतिथि आदि अन्य पूजा-योग्य माने जाते हैं, वे मेरे बाद ही पूजा के अधिकारी होते हैं। मैं 'भूरिस्थात्रा' हूँ, बहुत रूपों में स्थित हूँ। मेरा एक रूप जनयित्री का है, एक रूप पालयित्री का है, एक रूप संहर्त्री का है, एक रूप दयामयी का है, एक रूप न्याय की अधिष्ठात्री का है, एक रूप सुखदात्री का है। मैं ही जगत् की सब वस्तुओं को अपने-अपने स्थान पर स्थित करनेवाली हूँ। मैंने ही यथास्थान हिमालय आदि पर्वतों को स्थापित किया है, मैंने ही चारों ओर समुद्रों को स्थापित किया है, मैंने ही श्राकाश में सूर्य, चन्द्र, मेघमण्डल आदि को स्थापित किया है, मैंने ही भूमि के अन्दर सोना- चाँदी आदि की खानें स्थापित की हैं, मैंने ही भूतल पर वृक्ष-वनस्पति आदि को स्थापित किया है, मैंने ही रत्नाकरों में रत्नों को स्थापित किया है। ऐसी महिमामयी मुझ जगदीश्वरी को मेरे भक्त देवजन अनन्त रूपों में अपने हृदय में धारण करते हैं, ध्याते हैं, पूजते हैं। यदि तुम भी मुझसे कुछ लाभ प्राप्त करना चाहते हो तो मुझे स्मरण करो। तुम्हारे स्मरण करते ही मैं दौड़कर तुम्हारी सुध लेने के लिए तुम्हारे समीप आ जाऊँगी।

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

श्रीमद्द यानन्द सरस्वती की प्रथम जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर फरवरी 1925 में

श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी का धर्मोपदेश

आपने कहा कि 'मोक्ष' के दो ही मार्ग हैं। एक ज्ञान का, दूसरा कर्म का । वेदानुसार दोनों समन्वित साधन हैं। काशी के अजामेध यज्ञ में बाल शास्त्री भी सम्मिलित थे, भले ही उन्होंने मांस नहीं खाया, वे परन्तु लोग इसे ही उनकी मृत्यु का कारण ठहराते हैं। इसी प्रकार यदि कोई मन्तव्य तो रखता हो परन्तु कर्त्तृतव्य न करता हो तो फलभागी नहीं हो सकता है। मनु ने पांच प्रकार के चांडाल बतलाये हैं। हिंसक मद्यप चोर, व्यभिचारी तथा इनसे सम्बन्ध रखने वाला। भाइयो, केवल प्रार्थना करने बाला और तदनुसार कर्म न करने माला भांड होता है। अतः कर्मशील होना चाहिये।

श्री पं. बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार का भाषण–

सभ्य महोदयो, देवियो तथा भद्र पुरुषो । मैं आज अपने हृदय के अन्दर उठने वाले भावों का वर्णन नहीं कर सकता। जिस विषय पर मुझे कहना है उसे ही कहूँगा। आज एक वृहत् यज्ञ का आरम्भ होता है। इसलिए यज्ञ पर महर्षि ने जो उपकार किया है उसे ही मुझे वर्णन करना है। आज सभाओं में विचार किया जाता है कि स्कूलों और कालिजों की शिक्षा प्रणाली को बदल दिया जाय क्योंकि इसने हमारी सन्तानों को ईसाई बना दिया। परन्तु यह हमारा ही दोष है कि हमने उनको शिक्षा नहीं दी और फिर उनको दूसरों ने जैसा सिखाया वे उसे ही मान गये। यदि झूठ बात को भी सब चिल्ला कर दोहराने लग जांय तो सब उस पर विश्वास करने लग जाते हैं। यदि चार आदमी बैठ कर किसी को पागल बनाना चाहते हैं तो वे चार कोनों पर बैठ जाते हैं और उसे पागल बना देते हैं। कहते हैं कि एक बार लड़कों ने सलाह की कि स्कूल से छुट्टी ले लेवें। जब मास्टर साहब आये, उन्होंने कहा, ''क्यों मास्टर साहिब! आज चेहरा क्यों उदास है ?'' दूसरे ने कहा, ''घर में कुशल तो है न?'' इसी प्रकार तीसरे चौथे ने कहा, और मास्टर साहिब ने तंग आकर छुट्टी दे दी। इसी तरह यदि हम लोग किसी को पागल बनाना चाहें तो उसे पागल बना सकते हैं। भारत वर्ष के नवयुवकों के साथ ऐसा ही व्यवहार हुआ। पहिले ही दिन उन्होंने पढ़ा कि प्राचीन लोग यज्ञ किया करते थे और उनमें पशुओं की बलि देते थे। और वही भाव लेकर वे कहते हैं कि हम अपराधी कैसे ? तो क्या युरोप के विद्वान् इनके अपराधी थे जिन्होंने वेद के आशय को पढ़ाया ? युरोपियन विद्वानों ने वेद का अनुसन्धान करके पढ़ा था। उन्होंने वेद का उल्टा अर्थ लगाया कैसे? आप अपने भाष्यों को देखिये । उनका अंग्रेजों ने अनुवाद किया और हमारे बच्चों ने उसे पढ़ा। परन्तु ऋषि ने कैसा परिवर्तन किया है? वह इसको कैसी स्वच्छ व्यवस्था में लाया है? आज मैं उसी का वर्णन करता हूँ। कैसी घोर अवस्था हो गई थी ! युरोपियन विद्वानों का क्या दोष है ? ब्रह्मवैवर्त पुराण को उठा कर देखिये, कहने में सङ्कोच होता है, परन्तु संकोच करना गुरु ने सिखाया नहीं। एक राजा के यज्ञ में करोड़ गौए मारी गई। यह ब्राह्मवैवर्त पुराण में लिखा है। यह तो यज्ञ के नाम पर होता था। इसलिए आज कहते हैं कि हरिद्वार में गंगा पलट गई। अधर्म की जो घटायें घिरी थीं उनको महर्षि ने छिन्न भिन्न कर दिया। आज मैं बतलाऊंगा कि वेदों का जो अर्थ किया गया है वह अशुद्ध है। उनके ठीक अर्थों को समयाभाव के कारण मैं नहीं बतला सकूंगा । सब से पहले मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि वेद का अर्थ कुद्ध का कुछ हुआ। आज वेद की मीमांसा करने का दिन है। इस लिए ऋषि दयानन्द ने यज्ञ की क्या विधि बतलाई है उसका वर्णन किये बिना नहीं रहा जा सकता । मैं जब छोटा बालक था तब मैं गुरुकुल में पढ़ने गया । मैं यू. पी. का रहने वाला था और मेरे संगी साथी पंजाब के रहने बाले । मैंने कहा, ''भाइयो ! आज तो कुकड़ी चबाने को मन करता है।'' जितने पंजाबी साथी थे सब के सब यह सुन कर मुझे लिपट गये और कहने लगे, ये क्या अनर्थ है ? तुम कहां पैदा हुए हो कि यह भ्रष्ट शब्द मुख से निकाल रहे हो। मैंने कहा – ''आज कल कुकड़ी का मौसम है। इसमें आश्चर्य ही क्या है?'' पंजाबी भाई बड़े रुष्ट हुए। परन्तु जब मैंने यह बतलाया कि यह कुकड़ी का मौसम है उसमें दाने होते हैं इत्यादि । तब वे समझे कि छल्ली को कुकड़ी कहते हैं। इसी तरह एक यू.पी. वाला पंजाब में चला गया। कोई बेगन बेचता था। यू० पी० यदि वाले ने पूछा यह क्या है ?

क्रमशः अगले अंक में...

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

(पूर्वपक्षी) हम मुसलमान लोग बुत्परस्त नहीं हैं किन्तु बुत्शिकन अर्थात् मूर्तो को तोड़नेहारे हैं क्योंकि हम किबले को खुदा नहीं समझते।

(उत्तरपक्षी) जिन को तुम बुत्परस्त समझते हो वे भी उन-उन मूर्त्तों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उन के सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि बुतों के तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद किबले बड़े बुत् को क्यों न तोड़ा ?

(पूर्वपक्षी) वाह जी! हमारे तो किबले की ओर मुख फेरने का कुरान में हुक्म है और इन को वेद में नहीं है फिर वे बुत्परस्त क्यों नहीं? और हम क्यों ? क्योंकि हम को खुदा का हुक्म बजा लाना अवश्य है।

(उत्तरपक्षी) जैसे तुम्हारे लिये कुरान में हुक्म है वैसे उन के लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम कुरान को खुदा का कलाम समझते हो वैसे पुराणी भी पुराणों को खुदा के अवतार व्यास जी का वचन समझते हैं। तुम में और इन में बुत्परस्ती का कुछ भिन्नभाव नहीं है प्रत्युत तुम बड़े बुत्परस्त और ये छोटे हैं। क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे तब तक उस के घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय वैसे ही मुहम्मद साहेब ने छोटे बुत् को मुसलमानों के मत से निकाला परन्तु बड़ा बुत् जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद है वह सब मुसलमानों के मत में प्रविष्ट करा दी, क्या यह छोटी बुत्परस्ती है? हां! जो हम वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ तो बुत्परस्ती आदि बुराइयों से बच सको अन्यथा नहीं। तुम को जब तक अपनी बड़ी बुत्परस्ती को न निकाल दो तब तक दूसरे छोटे बुत्परस्तों के खण्डन से लज्जित होके निवृत्त रहना चाहिये और अपने को बुत्परस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये।।३१।।

३२-जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उन के लिये यह मत कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं। (समीक्षक) भला ईश्वर के मार्ग में - मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५४।।

मरने मारने की क्या आवश्यकता है? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करने के लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मारने से न डरेंगे, लूट मार कराने से ऐश्वर्य प्राप्त होगा, पश्चात् विषयानन्द करेंगे इत्यादि स्वप्रयोजन के लिये यह विपरीत व्यवहार किया है।।३२।।

३३-और यह कि अल्लाह कठोर दुःख देने वाला है।। शैतान के पीछे मत चलो निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है।। उसके विना और कुछ नहीं कि बुराई और निर्लज्जता की आज्ञा दे और यह कि तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते।।

- मं० १। सि० २। सू० २। आ० १६८। १६९। १७०।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर–संग्रह

अनेक विषय

(पृष्ठ १६, प्रश्नोत्तर १००) 'पहले कहने वाला ''परमात्मा जयति'' कहे और उत्तर देने वाला ''जयति परमात्मा'' कहे।'

(समीक्षा) यह कल्पना वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध होने के कारण सर्वधा ही मिथ्या जान पड़ती है क्योंकि ''नमस्ते रुद्र मन्यवेद्द । नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः'' इत्यादि यजुर्वेद वचन ''परषिभ्यो नमः'' ''नमो बहाणे नमस्ते वायो इत्यादि उपनिषद् वचन, इनसे निश्चित यही सिद्ध होता है कि परस्पर सत्कारार्थ (नमस्ते) शब्द से व्यवहार करने में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है और परस्पर अर्थ भी यथावत् घटता है जैसे (ते) तुभ्यं वा तव अर्थात् जिस को मान्य देता है उसका वाची है और (नमः) शब्द नम्रार्थवाचक होने से नमस्कार कर्ता का बोधक है मैं तुम के नमता है अर्थात् (ते) आप वा तेरा मान्य वा सत्कार करता है। इसमें नमस्कर्ता और नमस्करणीय दोनों का परस्पर प्रसंग प्रकाशित होता है और यही अभिप्राय दोनों का है कि दोनों प्रसन्न रहें और जो असंबद्ध प्रलाप अर्थात् तीसरे परमेश्वर का प्रसंग लाना है सो व्यर्थ ही है। जैसे ''आम्रा- न्पृष्टः कोविदारानाचष्टे'' किसी ने किसी से पूछा कि आम्र के वृक्ष कोन से हैं उसने उसे उत्तर दिया कि ये कचनार के वृक्ष हैं। क्या ऐसी ही यह बात नहीं है ? किसी ने ईश्वर का प्रश्न पूछा ही नहीं और न कोई परस्पर सत्कार के व्यवहार में ईश्वर प्रसंग है और कह देना कि (परमात्मा सारे उत्कर्षों के साथ विराजमान है) यह वचन हठयुक्त का नहीं तो और क्या है? हाँ जहाँ परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना उपदेश और व्याख्या करने का प्रसंग हो वहाँ परमात्मा के नाम का उच्चारण करना सबको उचित है। जैसा राम-राम, जय गोपाल, जय कृष्णादि शब्दों से परस्पर व्यवहार करना, यह हठ दुराग्रह से सम्प्रदायी लोगों ने वेदादि शास्त्रविरुद्ध मनमानी व्यर्थ कल्पना की है, उसी प्रकार से मुन्शी इन्द्रमणि जी व लाला जगन्नाथदास जी की युक्ति और प्रमाण से शून्य यह कल्पना दृष्टि पड़ती है।

इन विषयों में मुन्शी इन्द्रमणि जी और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का संवाद पूर्व समय में भी हो चुका है। परन्तु मुन्शी जी कब मानते हैं। विशेष क्या लिखें । शोक है कि लाला जगन्नाथदास की करतूतों को विचार कर अब मुझको यह कहना पड़ा कि इन दोनों महात्माओं के प्रतिज्ञा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहें, वे आर्य समाज मेरठ, लाला रामसरनदासादि व भद्र पुरुषों से पूछ देखें कि अन्य मार्गियों के विवाद विषय की शान्तिकारक व्यवहार प्रसंग में इन्होंने कैसा कैसा विपरीत व्यवहार किया, जिसको सब जानकार आर्यलोग जानते हैं। सत्य यह बात चली आती है कि ''सब पापों का पाप लोभ है'' जो कोई उसी तृष्णारूपी नदीप्रवाह में बहे जाते हैं उनमें पवित्र वेदोक्त आर्य्य धर्म की स्थिरता होनी कठिन है। अब जो मुन्शी इन्द्रमणि जी और उनके चेले लाला जगन्नाथदास, स्वामी जी और भद्र आर्य्यों की व्यर्थ निन्दा करें तो इसमें क्या आश्चर्य है ? पाठक गण ! ठीक भी तो है जब जैसे में वैसा मिले फिर क्या न्यूनता रहै। जैसे दावानल अग्नि का सहायक वायु होता है वैसे ही इनके श्री मुन्शी बख्तारसिंह जी सहायकारी बन बैठे। अब तो जितनी निन्दा आर्य्य लोगों की करें उनती ही थोड़ी। चलो भाई यह भी अच्छी मण्डली जुड़ी । महाशयो ! जब तक तुम्हारा पेट न भरे तब तक निन्दा करने में कसर न रखना क्योंकि यह अवसर अच्छा मिला है। जैसे किसी कवि ने यह श्लोक कहा है सो बहुत ठीक है ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।१।।

चाहै कोई अपने मतलब की नीति में चतुर निन्दा करे वा स्तुति करें, चाहै लक्ष्मी प्राप्त हो वा चलीले चाहे मरण आज ही हो वा वर्षान्तरों में परन्तु जो धीर पुरुष महाशयं महात्मा आप्तजन हैं वे धर्म मार्ग से एक पाद भी विरुद्ध अर्थात् अधर्म मार्ग में नहीं चलते।

सभ्य गणो ! यह तो आर्यों की शुभेच्छा का कारण है, परन्तु जो प्रथम उत्तमाचरण करके पश्चात् गड़बड़ा जाये वे हो तो आर्यावत्त के हानिकारक होते हैं। परन्तु यह सदा ध्यान में रखना चाहिए क ''श्रेयांसि बहुविघ्नानि'' जो इस सनातन वेदोक्त सत्य धर्म का आचरण करते हैं उसमें अनेक विघ्न क्यों न होय, तदपि इस सत्यमार्ग से चलायमान न होना चाहिए। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर परमात्मा अपनी कृपादृष्टि से इन विघ्नों से हम से और हम को इनसे सर्वथा दूर रखकर हम से आर्यावर्तृत की उन्नति कराने में सहायके रहै। इस थोड़े लेख से सज्जन पुरुष बहुत सा जान लेंगे। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ।

क्रमशः अगले अंक में...

आत्मदर्शी दयानन्द

-पंडित चमूपति

(स्वर्गीय पं० चमूपतिजी एम. ए. का यह लेख तब का लिखा हुआ है जब वे गुरुकुल काँगड़ी के मुख्याधिष्ठाता थे। यह लेख साप्ताहिक प्रकाश उर्दू और 'आर्य मुसाफिर' में भी छपा था। आचार्य दयानन्द ने आर्यसमाज को स्कूल कमेटी नहीं बनाया था। महर्षि का लक्ष्य वेद-प्रचार व ईशोपासना की रीति चलाना था। ऋषि, महर्षि, यति योगेश्वर दयानन्द का अनूप रूप समझना हो तो यह लेख बारम्बार पढ़िए।)

ऋषि दयानन्द का जन्म एक भ्रान्ति-प्रधान युग में हुआ था। कोई ऐसी असम्भव बात न थी जिसे योग की सिद्धि के नाम पर सम्भव न समझा जाता हो। योगियों की विशेषता ही चमत्कार था । धार्मिक नेताओं का गौरव ही उनके आलौकिक कारनामों के कारण था।

धर्म की इस प्रवृत्ति को आर्यसमाज ने अन्धविश्वास समझा और इसका घोर खण्डन किया। परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाज की श्रद्धा विभूति मात्र से उड़ गई। सौभाग्यवश

आर्यसमाज का अपना ऋषि मूर्त सदाचार था। ऋषि की इस विभूति को आर्यसमाज के प्रचारकों ने हाथों हाथ उठा लिया और इसी चमत्कार की कसौटी पर संसार भर के सिद्धों के जीवन परखे जाने लगे। भला इस क्षेत्र में किसी की ताव थी कि दयानन्द से लोहा लेता? दयानन्द का निष्पाप कुन्दन-सा जाज्वल्यमान उज्ज्वल चरित्र आर्यसमाज का वह अमोघ हथियार था जिसके आगे विरोधी चारों खाने चित्त थे। आर्यसमाज को अपने मन्तव्यों के गौरव की स्थापना के लिए किसी आलौकिक कारनामे का आश्रय लेना ही नहीं पड़ा।

तो क्या अलौकिक कारनामों की कथाएँ वस्तुतः मिथ्या हैं? क्या संसार की सम्पूर्ण घटनाओं के संचालक केवल भौतिक नियम तथा भौतिक शक्तियाँ ही हैं? या क्या आत्मा भी कोई सचमुच की वस्तु है- ऐसी वस्तु जिसके अस्तित्व का संसार के जीवन पर मूर्त-अनुभव में आने वाला-प्रभाव पड़ता हो?

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ का विज्ञान प्रधान यूरोप आत्मा तथा परमात्मा की सत्ता को ही जवाब दे चुका था। जब विश्वचक्र की सभी घटनाओं का समाधान प्राकृतिक नियमों के द्वारा हो जाता है तो अप्राकृतिक सत्ताओं को स्वीकार करने की आवश्यकता ही क्या है? उन दिनों विज्ञान का अर्थ ही प्राकृतिक समझा जाता था। मनोविज्ञान का भी एक ऐसा रूप निकल आया जिसका नाम ही पड़ा मनः शरीर - शास्त्र (psychophysics)। इसके द्वारा मानसिक घटनाओं की व्याख्या शारीरिक-तन्तुओं (nerves) ही की-परिभाषा में की जाने लगी। परन्तु विज्ञान का तो काम ही गवेषणा करना है। मानव जीवन का मानसिक पहलु वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए एक विशेष क्षेत्र पेश करता है। इस क्षेत्र की साधारण घटनाओं की व्याख्या भी भौतिक नियमों द्वारा करनी असम्भव है। परन्तु साधारण घटनायें फिर साधारण थीं, इनकी ओर अन्वेषणकर्ताओं का विशेष ध्यान क्यों जाता? आँख देखती क्यों है? जिन भौतिक अंशों के संयोग से यह बनी है उन्हें कोई रासायनिक अब मिला देखे। एक कृत्रिम चक्षु बन जाएगा, परन्तु वह देख नहीं सकेगा। भूख का रूप भौतिक भोजनाभाव के अतिरिक्त एक विशेष प्रकार की मानसिक वेदना का है। उसकी भौतिक व्याख्या करना असम्भव है। अन्वेषणकर्ता आश्चर्यचकित तब हुए जब सैकड़ों मील की दूरी पर हो रही घटनाओं का साक्षात्कार कई मनुष्यों ने इस प्रकार किया मानो वे घटनायें उनकी आँखों के सामने हो रही हैं । बरसों बाद होने वाली बात इसी वर्तमान क्षण में मूर्त होकर दृष्टि के सामने आ गई। एक हृदय में उद्बुद्ध हो रही भावना, दूसरे हृदय में झट संचारित हो गई। विचार का संचार बिना किसी भौतिक बिजली के तार के किया गया। इन विचित्र कार्यों की भौतिक व्याख्या क्या हो सकती थी?

आज विज्ञान किसी अप्राकृतिक सत्ता होने का विरोध नहीं करता और यद्यपि सदाचार का पक्का भौतिक आधार किसी अलौकिक सत्ता की अनुभूति ही हो सकती है-बिना आध्यात्मिक विचार के, सदाचार युक्ति के क्षेत्र में ठहर ही नहीं सकता-तो भी सदाचार के नियमों का क्रियात्मक पालन बिना इस अनुभूति के भी भली प्रकार होता रहा है। मानव समाज के कई अद्वितीय सेवक नास्तिक-कट्टर निरीश्वरवादी-हुए हैं।

यह सच है कि बिना सदाचार के धर्म का कोई रूप नहीं बनता। किसी पुरुष में आध्यात्मिक विभूतियाँ चाहे कितनी भी स्पष्ट क्यों न हों, यदि उसके आचार पर उन विभूतियों का कोई विशेष रंग नहीं चढ़ा तो धर्म के क्षेत्र में वह पुरुष पाँव नहीं रख रहा, किन्तु दुलत्ति चलाने की चेष्टा मात्र कर रहा है। आध्यात्मिक अनुभूति की पूर्ण परिणति सन्त स्वभाव युक्त सदाचार में ही है। इसी सन्त-स्वभाव को आधुनिक मनोवैज्ञानिक धर्म कहते हैं। सदाचार ही धर्म का बाह्य अंग है, परन्तु इसमें आन्तरिक मधुरता-अलौकिक संजीवनी का सा रस- आध्यात्मिक भावना से ही आता है।

ऋषि दयानन्द में सदाचार की पराकाष्ठा है, परन्तु क्या इनके इस सदाचार का आधार कोई आध्यात्मिक अनुभूति थी? वे तर्क के पुतले थे, परन्तु क्या वह तर्क नीरस था? या उसमें रसपूर्ण भावना का भी एक प्रबल पुट था? तर्क ने उनकी भक्ति को आँख मींचकर 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की प्रवृत्ति से दूर ही रखा, परन्तु उनके महत्व की इतिश्री इसी में हो जाती है कि उन्हें तर्क के क्षेत्र में धोखा नहीं दिया जा सकता था।

'साक्षात् कृत धर्माण ऋषयोबभूवः'-यास्क की इस उक्ति के अनुसार ऋषि कहते ही उस पुरुष को हैं जिसने धर्म का अर्थात् उस शक्ति का जो समस्त सत् पदार्थों को धारण करती है, साक्षात्कार किया हो । भौतिक संसार की आधारभूत एक आध्यात्मिक सत्ता है। सदाचार का वास्तविक मूल यही है। ऋषि अपने आध्यात्मिक नेत्रों से उसका दर्शन करता है। इसी में उसका ऋषित्व है। दूसरे शब्दों में हमारे प्रश्न का एक और रूप यह हो जाएगा कि क्या स्वामी दयानन्द ऋषि थे? ।

इस प्रश्न का उत्तर किसी और की साक्षी से दे सकना असम्भव है। सन्तों के जीवन में कुछ ऐसे बाह्य गुण पाये जाते हैं, जिनसे वे प्राणिमात्र को अपनी ओर खींच लेते हैं। उनसे उनका आत्मसाक्षात्कार प्रमाणित होता है, परन्तु बाह्य लक्षण फिर भी बाहर ही वस्तु है। उसके सम्बन्ध में भ्रान्ति हो सकती है। अपने आन्तरिक अनुभव को अन्तिम गवाह तो प्रत्येक पुरुष अपने आप ही हो सकता है। विभु परमेश्वर का सम्बन्ध प्रत्येक आत्मा से उसके हृदय की गुफा में ही होता है। वेदों तथा उपनिषदों में इन आध्यात्मिक अनुभूतियों के मुँह बोलते चित्र मिलते हैं, यद्यपि किसी उपनिषत्कार ने अपने वैयक्तिक अनुभव का वर्णन अपने नाम के साथ जोड़कर नहीं किया। फिर वेद तो है ही वेद, उनमें नामों का क्या काम?

यद्यपि ऋषि दयानन्द ने भी इस विषय में मौनावलम्बन किए रहने की प्राचीन ऋषियों की शैली का पूर्णतया अनुसरण किया है तो भी कई स्थानों पर उनकी आध्यात्मिक अनुभूति की अनायास झाँकी सी मिल जाती है। हम नीचे कतिपय उक्तियों और घटनाओं का उल्लेख करेंगे, जिनमें ऋषि के जीवन के इस पहलु पर प्रकाश पड़ सके।

ऋषि दयानन्द के योग-प्रत्यक्ष का पहला उल्लेख उनकी आत्मकथा ही में मिलता है। ऋषि लिखते हैं-

फिर एक मास के पश्चात् मैं भी उनकी आज्ञा के अनुसार दूधेश्वर-महादेव के मन्दिर में उनसे जाकर मिला। वहाँ उन्होंने योगविद्या के अन्तिम रहस्य और उसकी प्राप्ति की विधि बताने की प्रतिज्ञा की थी सो उन्होंने भी अपना वचन पूरा किया और कथनानुसार-मुझको भी निहाल कर दिया ।

ऋषि ने भौतिक क्षेत्र में भी प्रत्यक्ष ही की साक्षी का अवलम्बन किया था। यह बात उनके अपने हाथ से शवछेदन की क्रिया करने से प्रकट होती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उनकी यही अवस्था थी। सुनी-सुनाई पर विश्वास कर लेना उनकी प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल था। उनके एक पत्र में नीचे लिखी सारगर्भित उक्ति ध्यान देने योग्य है-

बहूनामार्याणां वेदशास्त्र बोध समाधि योग विचाराभ्याम्।

जीव स्वरूप ज्ञानं बभूव भवति भविष्यति वेति।।

(ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाद्रॉ पृ० ५७)

इस वाक्य में भवति शब्द ध्यान देने योग्य है।

कुछ समय महर्षि केवल समाधि ही का आनन्द लेते रहे थे। तत्पश्चात् वे देशसुधार का कार्य करने लगे। वे लिखते हैं -

हमने केवल परमार्थ और स्वदेशोन्नति के कारण समाधि और बह्मानन्द को छोड़ कर यह कार्य ग्रहण किया है।(पत्र और विज्ञापन भाग ४ पृ० १८)

आर्याभिविनय में ऋषि दयानन्द के हृदय के आन्तरिक उद्गार प्रकट हुए हैं। परमेश्वर को सम्बोधित कर कहते हैं -

'हम से अलग आप कभी मत हों ।'(पृ० ११०)

'आप (स्वमुख) स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो।'(पृ० ८७)

'आप साम को सदा गाते हो, वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो।'(पृ० ८)

जैसे सूर्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय, पशु अपने-अपने विषय और घासादी में रमण करते हैं व जैसे मनुष्य अपने घर में रमण करता है वैसे ही आप स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिए।(पृ० ८४)

परमेश्वर से ऋषि दयानन्द का सम्बन्ध साक्षात् था। सदा उसे अपने अंग संग पाते थे और उससे अलग न होने का आग्रह करते थे। प्रभु के मधुर आलाप को सुनते थे और उसके अति रमणीय रमण का आनन्द लेते-लेते स्वयं भी उसी में रत हो जाते थे।

इस सम्बन्धा के परिणामस्वरूप कुछ विशेष मानसिक शक्तियाँ योगी को अनायास प्राप्त हो जाती हैं। उन्हें सिद्धि कहा जाता है। योगी इन शक्तियों की आकांक्षा नहीं करता। उनमें आसक्त हो जाने से समाधि के रास्ते में बाधा खड़ी हो जाने की सम्भावना है।ऋषि अपने विषय में लिखते हैं –

मैं इन तमाशों की बातों को देखना दिखलाना उचित नहीं समझता। चाहे वे हाथ की चालाकियों से हों चाहे योग की रीति से हों, किन्तु कोई चाहे तो उसको योग की रीति सिखला सकता हूँ कि जिसके अनुष्ठान करने से वह स्वयं सिद्धि को प्राप्त हो जाए।(पत्र और विज्ञापन भाग १)

एक और स्थान पर लिखा है-देखो पूर्वकाल में हमारे ऋषि मुनियों को कैसी पदार्थ विद्या आती थी कि जिससे आत्मा के बल से सब अन्तःकरण के भेद को शीघ्र ही जान लिया करते थे-भीतर के पदार्थों के योग से योगी लोग अपने अद्भुत कर्म कर सकते थे।(पत्र विज्ञापन भाग २ पृ० २०)

इन दो उद्धरणों को मिलाने से स्पष्ट हो जाएगा कि ऋषि दयानन्द जब किसी मानसिक तथ्य का वर्णन सामान्य संज्ञा द्वारा ऋषियों की सम्पूर्ण श्रेणी के विषय में करते हैं तो वह तथ्य उनका अपना अनुभूत होता है। जीवन-स्वरूप-ज्ञान के सम्बन्ध में जो एक संस्कृत वाक्य ऊपर उद्धृत किया गया है उसका निर्देश ऋषि को अपनी ओर होने में अब कोई सन्देह नहीं रहेगा।

ऋषि दयानन्द को दूर देश तथा भविष्य काल की घटनाओं का साक्षात्कार हो जाने के अनेक उदाहरण उनके जीवन चरित्र में मिलते हैं। ऋषि ने एक नवयुवक को एक विशेष अवधि तक विवाह करने से रोक दिया था। अवधि के समाप्त होते ही उसका देहान्त हो गया। ऋषि की योग दृष्टि ने एक आर्यबाला को उम्र भर के वैधव्य से बाल-बाल बचा लिया। एक भक्त दूध लाया। ऋषि ने पूछा-क्या रास्ते में साँप देखा था? वह आश्चर्यचकित था- ऋषि को इस घटना का ज्ञान कैसे हुआ इत्यादि।

आध्यात्मिक अनुभूति का एक फल यह भी प्राप्त होता है कि जब वह अनुभूति किसी को प्राप्त हो जाती है तो लोगों के हृदय में उसके लिए अनायास भक्ति का भाव उमड़ने लगता है। यह बात यहाँ तक पहुँचती है कि भक्त जन जब कभी आँखे मींचते हैं उनके सामने

क्रमशः.....८ पर

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का आर्य हो अभिप्राय- मानव की आत्मा में देवत्व जगाने का बीजारोपण करना

मनुष्य मात्र के हित–कल्याण सुख समृद्धि और उन्नति के प्रयोजन से महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ईष्वरीय वेद वाणी व संस्कार व सरंकृति को सदैव प्रचारित रहने के लिए आर्य समाज की स्थापना की थी। और कहा था आर्य किसी ईसाई–मुसलमान–बौद्ध किसी सम्प्रदाय की संज्ञा नहीं है और न ही किसी प्रथक, जाति का बोध नही है, जो भी श्रेष्ठ धर्मात्मा परोपकारी सत्य विद्धादि गुण और आर्यवर्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं, उनको आर्य कहते हैं। वेदों में अनेक स्थानों पर आर्य व दस्यु शब्दों का प्रवेश हुआ है। अर्थात श्रेष्ठों का नाम आर्य देव और दुष्टों को दस्यु या अनार्य दो नाम हुए, वे ही आर्य हैं कि जो उत्तम वेदों की विद्धादि के प्रचार से सबके उत्तम भोग की सिद्धि और अधर्मी दुष्टो के निवारण के लिए निरन्तर यत्न करते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी चाहते थे कि न केवल भारतवर्ष में अपितु विश्व में सर्वत्र मनुष्य वेदानुकूल धर्मयुक्त गुणकर्म स्वभाव वाले बने वे श्रेष्ठ स्वभाव धर्मात्मा परोपकारी, और सत्य विद्यादि गुण युक्त हों। विश्व भर को आर्य बनाने में उन्हें यही अभिप्रेत था, कि सब कोई सदाचारी व धार्मिक बने। आजीवन ब्रह्मचारी रहकर उन्होंने इसी के लिए प्रयत्न किया और अपने विचार कार्यों को जारी रखने के लिए उन्होंने आर्य समाज की अर्थात सर्व श्रेष्ठ आचरण वाले सज्जनों का संगठन का नाम दिया।

आर्यों के प्राचीन गौरव के सम्बन्ध में महर्षि के मन्तव्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का मन्तव्य था कि प्राचीन काल में आयवर्त (भारत) के निवासी अत्यन्त उन्नत थे। सर्वत्र उनका सार्वभोम शासन था और सम्पूर्ण मानव समाज आर्यावर्त के आचार्यों व विद्ववानों से ही धर्म सदाचार और ज्ञान विज्ञान की शिक्षा ग्रहण किया करता था। यह आर्यवर्त देश ऐसा है, जिसके सदृष्य भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। और भूगोल में जितने भी देश है इसी देश की प्रशंसा करते हैं। और पारसमणी पत्थर तो सुना जाता है यह बात तो झूठी है परन्तु आर्यवर्त देश ही सच्चा पारसमणी है। सृष्टि से लेके पांच हजार वर्ष से पूर्व समय प्रयन्त आर्यों का सर्व भोम चक्रवर्ती अर्थात भूगोल में–सर्वोपरि एक मात्र राज्य था। अन्य देशों में मांडलिक छोटे छोटे राजा रहते थे। क्योंकि कौरव पांडव प्रयन्त यहां के राज्य और राज शासन सब भूगोल के राजा और प्रजा रहते थे। महाराजा युधिष्टर जी के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध प्रयन्त यहां के राज्याधिन सब राज्य थे। चीन का भगदत्त अमेरिका का बृहवाहन– यूरोप देश का विडालाक्ष और ईरान का शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध में आये थे। इससे पूर्व जब रघुवंश राजा थे, तब रावण भी यहां के आधीन था। अर्थात आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार प्राचीन काल में आर्य लोग राजनैतिक दृष्टि में विश्व के अग्रणी थे, और ज्ञान विज्ञान, धर्म संस्कृति में भी सबके शिरोमणी थे। अन्य देशों के लोगो ने विद्या धर्म आदि की शिक्षा आर्यवर्त के आर्यों से प्राप्त की थी।

प्राचीन साहित्य में से आर्य राज्यों के सम्बंध में परिचय संक्षिप्त रूप में

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का मानना है कि इसमें सन्देह नहीं है कि तिब्बत से भारत आकर आर्यों ने अपने अनेक राज्य स्थापित किये थे। भारत की प्राचीन मान्यता के अनुसार मनु ने पृथ्वी के सात द्वीपों को विभक्त कर अपने पुत्रों को उनका शासन करने के लिए नियुक्त किया था। ये द्वीप निम्नलिखित थे जम्बूद्वीप– लक्ष्यद्वीप– शल्मलिद्वीप– कुशद्वीप– क्रोचद्वीप– शाकद्वीप– पुष्करद्वीप। जिन्हें महर्षि दयानन्द जी ने आर्यावर्त कहा है। जिनमें आर्य राजाओं का शासन था। बाद में ऐसा समय आया कि कुछ राज्य आर्य मर्यादाओं का पालन नहीं करते थे, और यही लोग असुर–दस्यु–म्लेच्छ आदि कहाए और पृथ्वी के अन्य द्वीपों पर भी आर्य राजा मनु के वंशजों का शासन था। महाभारत के युद्ध में गान्धार–चीन–तुषार–षक–पल्हव–कम्बोज–दरद–वर्नर–लम्याक –दषेरक–तंर्गण–बाल्होक आदि सेना लेकर युद्ध में आये थे। प्राचीन काल में आर्यावर्त (भारत) के अतिरिक्त पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों में भी आर्य धर्म (वैदिक धर्म) एवं संस्कृति की सत्ता थी। वर्तमान समय में भारत के पश्चिम उत्तर तथा उत्तर पश्चिम में जो भी प्रदेश हैं उनसे आर्य धर्म और आर्य आचार–विचार का प्रायः लोप हो चुका है। राजनैतिक दृष्टि से वे समय समय पर सार्वभोम आर्य सम्राटों की अधीनता स्वीकार करते रहे और धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्र में उनकी मान्यताएँ विश्वास आचरण तथा पूजा पद्धति आदि आर्यों के सदृश ही रही।

प्राचीन संसार के विविध क्षेत्रों में आर्य सभ्यता के अन्त के संकेत

प्राचीन काल में आर्यावर्त (भारत) के अतिरिक्त पृथ्वी के अन्य अनेक क्षेत्रों में भी आर्य धर्म एंव संस्कृति की सत्ता थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का मानना था कि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब से पांच हजार वर्ष पूर्व तक आर्यों का सार्वभोम चक्रवर्ती राज्य था, और जितनी विद्या तथा धार्मिक विचार संसार में फैले है उनका आर्यावर्त से ही उन सब का प्रसार हुआ था। आधुनिक इतिहासकार भी इस बात को स्वीकार करते है कि पन्द्रहवी सदी ई0पूर्व में तुर्की और ईरान के निवासी ऐसे धर्मों के अनुयायी थे, वैदिक आर्य धर्म से जिनकी अनेक अंशों में समता थी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की चक्रवर्ती आर्य राज्य की कल्पना

महाभारत युद्ध के समय तक पृथ्वी पर आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। पांडव–युद्धिष्ठिर भी चक्रवर्ती आर्य सम्राट थे। महर्षि चाहते थे कि आर्यों के इस विलुप्त गौरव की पुनः स्थापना हो, एक बार फिर आर्यों का शासन और सर्वत्र आर्य धर्म का प्रचार हो। वे सच्चे अर्थों में आर्य श्रेष्ठ जनों का शासन स्थापित करना चाहते थे। सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज को आर्य बनाना ही उनका अभीष्ट था। मानव मात्र को श्रेष्ट व सदाचारी बनाने के लिए जो महान उद्योग महर्षि द्वारा प्रारम्भ किया गया था। उसी को जारी रखने के लिए उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की थी और आर्य समाज के दस नियम उन्होंने बनाऐ थे उनमें छटा नियम यह है।

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देष्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना, और सम्पूर्ण संसार की सर्वतोमुखी उन्नति के लिये ही महर्षि ने आर्य समाज नाम से एक संगठन का निर्माण किया था। उनकी कल्पना थी कि आर्यावर्त कें लोग एक बार फिर सच्चे रूप में आर्य बनकर भारत को विश्व गुरू बनाएं।

पं0 उम्मेद सिंह विशारद

नोटः–इस लेख में आर्यसमाज का इतिहास भाग (१) लेखक डा0 सत्यकेतु विधालंकार से सहायता ली गई है।

वैदिक प्रचारक
मो0 9411512019

सत्य का साक्षात्कार

–आचार्य अभयदेव विद्यालंकार

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।
यजुर्वेद १९।३०।।

शब्दार्थ –
व्रतेन.....व्रत से, सत्यनियम के पालन से मनुष्य
दीक्षां.....दीक्षा को, प्रवेश को
आप्नोति.....प्राप्त करता है
दीक्षया.....दीक्षा से
दक्षिणां.....दक्षिणा को, व्रृद्धि को, बढ़ती को
आप्नोति.....प्राप्त करता है।
दक्षिणा.....दक्षिणा से
श्रद्धां.....श्रद्धा को
आप्नोति.....प्राप्त करता है और सदा
श्रद्धया.....श्रद्धा द्वारा
सत्यं.....सत्य को
आप्यते.....प्राप्त किया जाता है।

विनय – प्यारे क्या तू सत्य को पाने के लिये व्याकुल हो गया है ? तो तू आ, इन चार सीढ़ियों द्वारा तू अवश्य ''सत्य'' को पा जायेगा। प्रारम्भ में, यदि तुझे सचमुच सत्य से प्रेम हो तो तुझे जहाँ कहीं कोई सच्चा नियम, सत्य नियम, व्रत पता लगेगा तू उसे अवश्य पालन करने लग पड़ेगा। इस तरह व्रतों को जानने और यथाशक्ति पालन करने की तेरी प्रव्रृति तुझे शीघ्र दीक्षा का पात्र बना देगी। दीक्षित होने पर तू पहिली सीढ़ी चढ़ जायेगा। दीक्षित हो जाना मानो सत्य के साम्राज्य में घुसने का प्रवेशपत्र पा लेना है और सत्य के दरबार में पहुंचने का अधिकारी बन जाना है, दीक्षित होने की इस पहिली सीढ़ी पर जब तू चढ़ जावेगा तो तू सत्य के वायुमण्डल में रहने वाला हो जावेगा और तेरा सत्यप्रेमी साथियों का परिवार बन जावेगा। तब तेरे लिये अपने अन्य सत्यपथिक भाइयों के अनुभव से लाभ उठाते हुए सत्यनियमों का जान लेना और उनका यथावत् पालन करना बहुत सहज हो जायेगा। एवं आगे आगे सत्य के पालन में अभ्यस्त होता हुआ तू तीसरी सीढ़ी पर भी तब पहुंच जावेगा जब कि तुझे यह स्वात्म-अनुभव हो जावेगा कि सत्य के पालन से तेरी व्रृद्धि (दक्षिणा) होती है, तेरी उन्नति होती है द्य तब तू स्वयमेव अनुभव करेगा कि सत्य के पालन से तू बलवान और उन्नत हो रहा है। कुछ आश्चर्य नहीं यदि उस समय बाहर का संसार भी तुझे प्रतिष्ठा देता हुआ और तेरे प्रति नानाविध दक्षिणायें लाता हुआ तेरी दक्षता, बलवत्ता और बढ़ूती को स्वीकार करे। तुझे अपने आप तो अपनी व्रृद्धि अनुभूत होगी ही। यह अनुभव ही तुझ में सत्य के लिये श्रद्धा उत्पन्न कर देगा और तुझे श्रद्धा की तीसरी सीढ़ी पर पहुंचा देगा। तब तुझमें सत्य के लिये ऐसी अटल श्रद्धा हो जायेगी कि तू त्रिकाल में भी यह शक नहीं करेगा कि कभी सत्य तेरी हानि भी कर सकता है। श्रद्धा पा जाने पर मनुष्य बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ने लगता है। अतः जब तू अपनी श्रद्धा में मग्न होकर सत्य के – केवल सत्य के पा लेने के लिये व्याकुल हुआ –हुआ एकग्र होकर अग्रसर हो रहा होगा तो इससे अगली उच्च सीढ़ी पर पैर रखते ही तुझे ''सत्य'' के दर्शन हो जायेंगे, सत्य का साक्षात्कार हो जावेगा, अपने प्यारे सत्य का साक्षात्कार हो जायेगा।

डॉ. अम्बेडकर के सवर्ण मार्गदर्शक

(मास्टर आत्माराम अमृतसरी)

-डॉ० विवेक आर्य

२०वीं शताब्दी के आरंभ में हमारे देश में न केवल आजादी के लिए संघर्ष हुआ अपितु सामाजिक सुधार के लिए भी बड़े-बड़े आन्दोलन हुए। इन सभी सामाजिक आन्दालनों में एक था शिक्षा का समान अधिकार। प्रसिद्द समाज सुधारक स्वामी दयानंद द्वारा अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में उद्घोष किया गया कि राजा के पुत्र से लेकर एक गरीब व्यक्ति का बालक तक नगर से बाहर गुरुकुल में समान भोजन और अन्य सुविधाओं के साथ उचित शिक्षा प्राप्त करे एवं उसका वर्ण उसकी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात ही निर्धारित हो और जो अपनी संतान को शिक्षा के लिए न भेजे उसे राजदंड दिया जाये। इस प्रकार एक शुद्र से लेकर एक ब्राह्मण तक सभी के बालकों को समान परिस्थियों में उचित शिक्षा दिलवाना और उसे समाज का एक जिम्मेदार नागरिक बनाना शिक्षा का मूल उद्देश्य था।

स्वामी दयानंद के क्रांतिकारी विचारों से प्रेरणा पाकर बरोदा नरेश शयाजी राव गायकवाड ने अपने राज्य में दलितों के उद्धार का निश्चय किया. आर्यसमाज के स्वामी नित्यानंद जब बरोदा में प्रचार करने के लिए पधारे तो महाराज ने अपनी इच्छा स्वामी जो को बताई की मुझे किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता हैं जो शिक्षा सुधार के कार्य को कर सके। पंडित गुरुदत विद्यार्थी जो स्वामी दयानंद के निधन के पश्चात नास्तिक से आस्तिक बन गए थे से प्रेरणा पाकर नये नये B.A. बने आत्माराम अमृतसरी ने अंग्रेजी सरकार की नौकरी न करके स्वतंत्र रूप से कार्य करने का निश्चय किया। स्वामी नित्यानंद के निर्देश पर अध्यापक की नौकरी छोड़ कर उन्होंने बरोदा जाकर दलित विद्यार्थियों को शिक्षा देने का निश्चय किया। एक पक्की सरकारी नौकरी को छोड़कर गुजरात के गाँव गाँव में दलितों के उद्धार के लिए धुल खाने का निर्णय स्वामी दयानंद के सच्चा भक्त ही कर सकता था।

आत्माराम जी बरोदा नरेश से मिले तो उनको दलित पाठशालाओं को खोलने विचार महाराज ने बताया और उन्हें इन पाठशालाओं का अधीक्षक बना दिया गया। मास्टर जी स्थान तलाशने के लिए निकल पड़े। जैसे ही मास्टर आत्माराम जी किसी भी स्थान को पसंद करते तो दलित पाठशाला का नाम सुनकर कोई भी किराये के लिए उसे नहीं देता। अंत में विवश होकर मास्टर जी ने एक भूत बंगले में पाठशाला स्थापित कर दी। गायकवाड महाराज ने कुछ समय के बाद अपने अधिकारी श्री शिंदे जी को भेजकर पाठशाला का हाल चाल पता कराया। शिंदे जी ने आकर कहाँ महाराज ऐसा दृश्य देख कर आ रहा हूँ जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। दलितों में भी अति निम्न समझने वाली जाति के लड़के वेद मंत्रो से ईश्वर की स्तुति कर रहे थे और दलित लड़कियां भोजन पका रही थी जिसे सभी स्वर्ण-दलित बिना भेदभाव के ग्रहण कर रहे थे। सुनकर महाराज को संतोष हुआ। पर यह कार्य ऐसे ही संभव नहीं हो गया। मास्टर जी स्वयं अपने परिवार के साथ किराये पर रहते थे, जैसे ही मकान मालिक को पता चलता की वे दलितों के उत्थान में लगे हुए हैं वे उन्हें खरी खोटी सुनाते और मकान खाली करा लेते। इस प्रकार मास्टर जी अत्यंत कष्ट सहते रहे पर अपने मिशन को नहीं छोड़ा। महाराज के प्रेरणा से मास्टर जी ने बरोदा राज्य में ४०० के करीब पाठशालाओं की स्थापना करी जिसमे २०,००० के करीब दलित बच्चे शिक्षा ग्रहण करते थे। महाराज ने प्रसन्न होकर मास्टर जी के सम्पूर्ण राज्य की शिक्षा व्यस्था का इंस्पेक्टर बना दिया। मास्टर जी जब भी स्कूलों के दौरों पर जाते तो सवर्ण जाति के लोग उनका तिरस्कार करने में कोई कसर नहीं छोड़ते पर मास्टर जी चुपचाप अपने कार्य में लगे रहे। सम्पूर्ण गुजरात में मास्टर आत्माराम जी ने न जाने कितने दलितों के जीवन का उद्धार किया होगा इसका वर्णन करना कठिन हैं। अपने बम्बई प्रवास के दौरान मास्टर जी को दलित महार जाति का B.A. पढ़ा हुआ युवक मिला जो एक पेड़ के नीचे अपने पिता की असमय मृत्यु से परेशान बैठा था। उसे पढने के लियें २५ रूपए मासिक की छात्रवृति गायकवाड महाराज से मिली थी जिससे वो B.A . कर सका था। मास्टर जी उसकी काबलियत को समझकर उसे अपने साथ ले आये। कुछ समय पश्चात उसने मास्टर जी को अपनी आगे पढने की इच्छा बताई। मास्टर जी ने उन्हें गायकवाड महाराज के बम्बई प्रवास के दौरान मिलने का आश्वासन दिया। महाराज ने १० मेघावी दलित छात्रों को विदेश जाकर पढने के लियें छात्रवृति देने की घोषणा करी थी। उस दलित युवक को छात्रवृति प्रदान करी गयी जिससे वे अमरीका जाकर आगे की पढाई पूरी कर सके। अमरीका से आकर उन्हें बरोदा राज्य की १० वर्ष तक सेवा करने का कार्य करना था। अपनी पढाई पूरी कर वह लगनशील युवक अमरीका से भारत आ गए और उन्होंने महाराजा की अनुबंध अनुसार नौकरी आरंभ कर दी। पर सवर्णों द्वारा दफ्तर में अलग से पानी रखने, फाइल को दूर से पटक कर टेबल पर डालने आदि से उनका मन खट्टा हो गया। वे आत्माराम जी से इस नौकरी से मुक्त करवाने के लियें मिले। आत्माराम जी के कहने पर गायकवाड महाराज ने उन्हें १० वर्ष के अनुबंध से मुक्त कर दिया। इस बीच आत्माराम जी के कार्य को सुन कर कोहलापुर नरेश साहू जी महाराज ने उन्हें कोहलापुर बुलाकर सम्मानित किया और आर्यसमाज को कोल्हापुर का कालेज चलाने के लिए प्रदान कर दिया। आत्माराम जी का कोहलापुर नरेश से आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो गया।

आत्माराम जी के अनुरोध पर उन दलित युवक को कोहलापुर नरेश ने इंग्लैंड जाकर आगे की पढाई करने के लिए छात्रवृति दी जिससे वे Phd करके देश वापिस लौटे। उन दलित युवक को आज के लोग डॉ० अम्बेडकर के नाम से जानते हैं जो कालांतर में दलित समाज के सबसे लोक प्रिय नेता बने और जिन्होंने दलितों के लिए संघर्ष किया। मौजदा दलित नेता डॉ. अम्बेडकर से लेकर पंडिता रमाबाई तक (जिन्होंने पूने में १५००० के करीब विधवाओं को ईसाई मत में सम्मिलित करवा दिया था) उनसे लेकर ज्योतिबा फुले तक (जिन्होंने सत्य शोधक समाज की स्थापना करी और दलितों की शिक्षा के लिए विद्यालय खोले) का तो नाम बड़े सम्मान से लेते हैं पर सवर्ण समाज में जन्मे और जीवन भर दलितों का जमीनी स्तर पर शिक्षा के माध्यम से उद्धार करने वाले मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी का नाम नहीं लेते। सोचिये अगर मास्टर जी के प्रयास से और स्वामी दयानंद की सभी को शिक्षा देने की जन जागृति न होती तो डॉ. अम्बेडकर महार जाति के और दलित युवकों की तरह एक साधारण से व्यक्ति ही रह जाते। मास्टर जी के उपकार के लिए दलित समाज को सदा उनका

आर्य-जीवन

(७ अप्रैल विश्व स्वास्थ्य दिवस "World Health Day" पर विशेष रूप से प्रकाशित)

-पं. राजाराम प्रोफेसर

उठने का समय और पहला कर्तव्य

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्य मियाय यस्मान्नन्यत् परमस्ति भूतम्।।

-अथर्व० १०/७/३१

सूर्य से पहले और उषा से पहले नाम नाम से उसे बार-बार पुकारे, जो अजन्मा है, (अतएव इस जगत् से) पहले प्रकट है, वह निःसन्देह जगत् प्रसिद्ध स्वराज्य को पाये हुए है, जिससे बढ़कर कोई सत्ता नहीं है।

उषा के फूटने का दृश्य-

उषा के पहले उठे हो, तो अब उषा के दृश्य को वैदिक दृष्टि से देखो। वेद में जो दिव्य दृश्य वर्णन किये हैं, वे निरे दृश्य नहीं किन्तु उनमें परमेश्वर की महिमा और उस दृश्य के द्वारा हमारे ऊपर होने वाले उपकार दिखलाना अभिप्रेत होता है, सो तुम इसी रूप में वैदिक दृश्यों को देखो-

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ठ विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवाय एवा रात्र्युषसे योनिमारैक।। -ऋ० १/११३/१

यह ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति आई है, यह रंगीला दृश्य (आकाश में) फैलता जा रहा है। जैसे उषा सूर्य की प्रवृत्ति के लिए स्थान छोड़ देती है, वैसे रात्रि ने उषा के लिए स्थान छोड़ दिया है।

इससे आर्यजीवन का यह अंग भी दिखला दिया है, कि एक आर्य को अपना निवास वहां रखना चाहिए, जहां दिव्य दृश्य उसके सम्मुख आते रहें। आजकल के शहरी पर जहां ये दृश्य देखने को नहीं मिलते, आर्यजीवन के विरुद्ध है। इन दृश्यों को देखने से प्रसन्नता बढ़ती है, स्वास्थ्य बढ़ता है, प्रसन्न वदन रहने का स्वभाव बनता है, और ईश्वर की महिमा से पूरित इन दृश्यों को देखने से आत्मबल बढ़ता है, और ये सभी बातें लोक में कार्यसिद्धि का मूल हुआ करती हैं।

पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासोअस्थुः।
कृष्णादुदस्थादर्या विहाया श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय।। -ऋ० १/१२३/१

उषा का विशाल रथ जुड़ गया है, इस पर मरण रहित देवता (किरणें) सवार हुए हैं, रानी उषा मनुष्य समुदाय के लिए चिकित्सा करती हुई काले आकाश से उठ खड़ी है।

इससे बोधन किया है, कि सवेरे उठने वाले नीरोग रहते हैं, और यह, कि तमोमय स्थान रोग का मूल होते हैं, उनकी चिकित्सा यही है, कि वहां खुले प्रकाश के द्वार खोल दो।

गृहं गृहमहना यात्यच्छा दिवे दिवे अधिनामा दधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्र मग्रमित् भजते वसूनाम।। -ऋ० १/१२३/४

उषा दिन पर दिन सवाया रूप धरती हुई घर-घर की ओर जाती है, यह कुछ देना चाहती हुई चमकती हुई सदा आती है, और अपने कोषों में से आगे-आगे बांटती ही जाती है।

श्लाघनीय जीवन यह है, कि मनुष्य का मस्तक सदा खिला रहे, चेहरा चमकता रहे, दूसरों की भलाई की इच्छा उसमें बनी रहे, अपना ऐश्वर्य बढ़ाता रहे, और बांटता रहे।

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः।
सह द्युम्नेन बृहतो विभावरि राया देवी दास्वती।। -ऋ० १/४८/१

हे उषा हे द्यौ की कन्या हमारे लिए सुहावने मनोरम दृश्य के साथ खिल, हे प्रकाश से भरी हुई बड़े यश, तेज और महत्व के साथ खिल, हे देवि दानशीला बनकर ऐश्वर्य के साथ खिल।

तेरा आगमन हमारे लिए यश, तेज, महत्त्व और ऐश्वर्य का लानेवाला हो, अर्थात् हम इस नए दिन को यश, तेज, महत्त्व और ऐश्वर्य की प्राप्ति से सफल बनावें। ऐसा चिन्तन करने से मनुष्य उद्योगी और धर्मशील बनता है।

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
येअस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः।। -ऋ० १/४८/३

उषा अन्धकार को सदा मिटाती आई है, वह अब फिर खिले, यह वह देवी है, जो उनके रथों को आगे बढ़ाते है, जो इसके आने पर सन्नद्ध हो जाते हैं, जैसे धन और यश की कामना वाले समुद्र में (जहाज ले जाने को तैयार होते हैं)।

श्लाघ्य जीवन वह है, जो सदा अन्धकार के मिटाने में प्रवृत्त रहे। जो लोग उषा का प्रकाश आते ही काम करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं, उनके रथ इस लोक में आगे बढ़ते हैं, अर्थात् जीवन की इस घुड़दौड़ में वही सबसे आगे रहते हैं और दूसरे उसकी पहुंच को नहीं पहुंच सकते, जो इस अमृत बेले सोए पड़े रहते हैं।

"जैसे धन और यश की कामना वाले समुद्र में" इस उपमा से यह दिखलाया है, कि उषा के समय जागने वालों में उत्साह और साहस बढ़ते हैं, उत्साही और साहसी ही धन और यश की कामना से समुद्रों के पार पहुंचते हैं। इससे समुद्र में से, वा समुद्र के पार से धन लाने और यश के झंडे गाड़ने को एक श्लाघ्य कर्म बतलाया है। अतएव यह निःसन्देह है, कि समुद्रयात्रा का निषेध जीवन की इस महिमा को भूल जाने पर हुआ है।

इस प्रकार पुरुष नेत्रों से परमेश्वर की महिमा देखता हुआ और मन में शुभ संकल्प लाता हुआ नए दिन का स्वागत करे।

क्रमशः.....८ पर

जीवन में कर्म की प्रधानता

-पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय

कुर्वन्नेवेह कर्माणि
जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न
कर्म लिप्यते नरे।।
(यजुर्वेद अध्याय ४०, मन्त्र २)

अन्वय :- इह कर्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत्। एवं त्वयिनरे न कर्म लिप्यते। इतः अन्यथा न अस्ति।

अर्थ- (इह) इस संसार में (कर्माणि) कर्मो को (कुर्वन् एव) करते हुए ही मनुष्य (शतं समाः) सौ वर्ष तक (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे। (एवं) यही एक साधन है जिसके द्वारा (त्वयि नरे) तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त न होंगे। (इतः अन्यथा) इससे भिन्न दूसरा कोई मार्ग (न अस्ति) नहीं है।

व्याख्या :-इस मन्त्र में 'कर्म' का गौरव और माहात्म्य दिखाया गया है। विस्तृत व्याख्या करने से पहले मुख्य भावना को समझने का यत्न करना चाहिए। जब एक बार भावना हृदयंगम हो जाती है तो अन्य तत्वसम्बन्धी बारीक बातें समझने में सुगमता होती है। मुख्य भावना यह है- ''कर्म करो तभी कर्म के बन्धनों से छुटकारा मिलेगा।'' कर्म क्या है और कर्म का बन्धन क्या है। इसके लिए एक दृष्टान्त पर विचार कीजिये। एक चोर ने चोरी की। चोरी एक कर्म था। शासन की ओर से उसे कारागार मिला। यह कारागार ही कर्म का बन्धन है। ''बाधना लक्षणं दुःखाम'' (न्यायदर्शन १/१/२१)। बन्धन ही दुख का लक्षण है। कैदी जेल में बन्द है। यह ''बन्धन'' है। वह नहीं चाहता फिर भी चक्की पीसनी पड़ती है। यह बन्धन है। कहीं जा-आ नहीं सकता, यह कर्म का बन्धन है। किसी अपने प्यारे से मिल नहीं सकता यही बन्धन है। यह सब कर्म के बन्धन हुए। कर्म था चोरी। कर्म के बन्धन हुए वह कर्म जो बिना इच्छा के जबरदस्ती करने पड़ते हैं। वेद मन्त्र कहता है कि इन कर्म के बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए भी निरन्तर कर्म करने चाहिए। उन कर्मों का प्रकार भिन्न होगा। उनकी प्रकृति भी भिन्न होगी। उनके लक्षण भी भिन्न होंगे परन्तु वह होंगे 'कर्म' ही। कर्म के बन्धन बिना कर्म किये नहीं छूट सकते। अनाचार दोष से रोग उत्पन्न होता है। उपचार से रोग दूर होता है। अनाचार भी कर्म था जिसका बन्धन हुआ रोग। उपचार भी कर्म है परन्तु भिन्न प्रकार का इसलिए वह 'बन्धन' का छुड़ाने वाला है, बन्धन को कड़ा करने वाल नहीं।

यह प्रश्न केवल दार्शनिक नहीं। लोक व्यवहार की नित्य चीज है। हम रोज तकदीर और तदबीर की बहस सुनते हैं। तकदीर बन्धन है और तदबीर कर्म है। जीवन में हम सैकड़ों बन्धन देखते हैं जिनको हमने नहीं बनाया। वह बन्धन कहीं से बने बनाए आ गये। जेल के विशाल भवन को चोर ने नहीं बनाया। किसी और शक्ति ने जबरदस्ती उसके ऊपर यह बन्धन थोप दिए। वह जकड़ा है। जैसा तकदीर में दिया है होगा, इससे छुटकारा नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि खुदा (ईश्वर) जो चाहता है करता है। जिसको चाहता है सन्मार्ग दिखाता है, जिसको चाहता है 'गुमराह' करता है। अल्लाह की मर्जी के विरुद्ध हो भी क्या सकता है। सरकार जबरदस्त है उसने मजबूत जेल खाना बनाकर उसमें चोर को ठूस दिया। कितने ही भागने की तदबीर करो भाग नहीं सकते। इसलिए उस घड़ी की प्रतीक्षा करो जब ईश्वर की ही मर्जी हो और वह बन्धन से मुक्त कर दे। ऐसे तकदीर के गुलामों की संख्या ईश्वर भक्तों में सबसे अधिक है। इसका परिणाम है 'आलस्य', क्रियाहीनता। आलस्य के साथ इसी के बहुत से बाल-बच्चे हैं जो अन्य रूपों में प्रकट होते हैं और बन्धनों को जकड़ते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो बन्धन से छूटने के लिए हाथ-पैर मारते हैं। कोई जेल की दीवार फांदकर भागता है। कोई खिड़कियों की छड़ों को तोड़ देता है। कोई चौकीदारों की आंख में धूल डालता है। इसको आप तदबीर कह सकते हैं। तदबीर के नाम पर सहस्त्रों पातक किये जाते हैं, जिनसे बन्धन ढीले नहीं होते अधिक कड़े हो जाते हैं। यह 'तदबीर' थी तो कर्म परन्तु यह सोचकर नहीं किये गए थे कि बन्धन के कारणों पर विचार किया जाता। अतः ऐसे कर्म छुटकारे के हेतु सिद्ध नहीं होते? कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है। कर्म करना संसार की हर वस्तु का स्वभाव है। मनुष्य भी इसी संसार का एक भाग है। सारी मशीन चलती है तो ऐसा कौन-सा पुर्जा है जो बिना चले रह सके। लेकिन एक काम इच्छा से किया जाता है और एक बिना इच्छा के। जीते तो सभी हैं परन्तु जीकर क्या करेंगे ऐसा तो बहुत कम लोग सोचते हैं। इसलिए वेदमन्त्र में एक शब्द आया है 'जिजीविषेत्'। इस रहस्य का सौन्दर्य समझने के लिए कुछ संस्कृत व्याकरण का पारिभाषिक ज्ञान आवश्यक है। यह क्रिया है 'विधिलिंङ्' और साथ ही सन्नन्त भी है। जिनको 'विधिलिंङ्' और सन्नन्त के स्वरूप का ज्ञान नहीं उनके लिए मन्त्र का महत्व समझने में कठिनाई होगी।

''विधि-निमंत्रण-आमंत्रण-अधीष्टसंप्रशन-प्रार्थनेषु लिंङ्'' (अष्टाध्यायी ३/३/१६१) यहां 'लिंङ्' लकार विधि के अर्थ में प्रयुक्त होता है अर्थात् जब किसी को आदेश देते हैं कि उसको अमुक काम करना ही चाहिए तो लिंङ् लकार का प्रयोग किया जाता है। अब 'सन्नन्त' (सन्अन्त) पर विचार कीजिए ''धातोः कर्मणः समान-कतृर्कात् इच्छायां वा'' (अष्टाध्यायी ३/१/६)। यहां इतना जानना पर्याप्त होगा कि जहां 'इच्छा' प्रकट करनी हो वहां क्रिया की धातु में 'सन्' जोड़ देते हैं। इस प्रकार जिजीविषेत् विधिलिंङ् भी है और सन्नन्त भी अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि जीने की इच्छा करे। किस प्रकार ''कर्माणि कुर्वन् एव'' (कर्म करते हुए भी) बिना कर्मों को करने की इच्छा के जीने की इच्छा से कोई लाभ नहीं। यदि कुदरत को यह मंजूर न होता कि हम चलें तो हमको पैर न मिलने चाहिए थे। यदि यह मंजूर न होता कि हम देखें तो आंखें देना निरर्थक था। इसलिए कुदरत ने हमारे शरीर के प्रत्येक अवयव में कुछ ऐसी प्रेरणा दी हुई है कि निरन्तर काम करना ही है। भेद केवल इतना ही है कि जो काम हम अपनी इच्छा से करते हैं उसके करने में मजा आता है। लोग नित्य सैर को जाते हैं। यदि सरकार आदेश दे देवे कि तुम को अवश्य ही सैर को जाना पड़ेगा तो सैर भी जान का बवाल हो जाती है। इसलिए वेदमन्त्र में उपदेश है कि पहले से ही ऐसी इच्छा करो कि सौ वर्ष जीना है तो निष्क्रिय न होकर अपितु कार्यक्रम बनाकर निरन्तर कर्म करने की योजना भी हो और इच्छा भी। सभी जीते रहना चाहते हैं। उनसे पूछो ''क्यों? किस काम के लिए?'' तो इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं है। यदि दो वर्ष और जीते रहो तो क्या करोगे? विचारा नहीं। ''बस खायेंगे, पियेंगे, मौज करेंगे।'' खाना-पीना और मौज करना कर्म तो नहीं यह तो जीवन के साधन मात्र हैं। खाना आसान है, पीना आसान है। परन्तु मौज करना तो आसान नहीं। (Eat you can] drink you can- But you cannot be merry) इसलिए कर्म करने की प्रबल इच्छा होनी चाहिए। जो बुद्धिमत्ता से कर्मों की योजना बनाता है और उस पर चलने का यत्न करता है उसका बन्धन छूट जाता है। जेल का कैदी जेल में रहकर जो नियुक्त कर्म करता रहता है वह जेल के बन्धन से अवश्य छूट जाता है। कर्मों के करने में तीन प्रकार के दोष आ सकते हैं। कर्तव्य को न करना, अकर्तव्य को करना, कर्तव्य का उल्टा करना। इन तीनों प्रकार के दोष कर्म-बन्धन के कारण होते हैं। यदि गेहूं न बोये जायें तो गेहूं पैदा न होगा, उगे हुए गेहूं में अधिक पानी देना, इससे गेहूं उत्पन्न होकर नष्ट हो जायेंगे और गेहूं के स्थान में जौ बो देना, तब भी गेहूं पैदा न होगा। अतः कर्तव्य कर्म के करने पर ही बन्धन छूटेगा। गीता में इसी वेद मन्त्र पर आधारित एक श्लोक है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मां कर्मफल हेतुर्भूः मा ते संगोस्त्वकर्मणः।।

यहां अधिकार का अर्थ है कर्तव्य। अधिकार, अधिकरण यह दोनों समानार्थक हैं। सूत्र ग्रन्थों में अधिकार सूत्र वह होते हैं जिनमें अन्य सूत्रों का समावेश होता है। गीता के श्लोक का तात्पर्य है कि कर्म ही मनुष्य के चिन्तन क्षेत्र का विषय या अधिकरण है फल नहीं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि बिना सोचे समझे अर्थात् किस कर्म से क्या फल होगा, किसी काम को कर दिया जाए। कर्म की प्रेरणा ही उसके फल की दृष्टि से होती है। गेहूं बोने वाला पहले देख लेता है कि गेहूं उगाने रूपी फल की प्राप्ति तभी होगी जब गेहूं बोया जायगा। ''स्वर्गकामोयजेत'' अर्थात् स्वर्ग की कामना वाले को यज्ञ करना चाहिए। यहां फल की न अपेक्षा है न अवहेलना। प्रश्न यहां चिन्तन का है। जब यह निश्चित हो गया कि अमुक कर्म हमारा कर्तव्य है तो फल का चिन्तन छोड़ देना चाहिए। फल की प्रेरणा आरम्भ में होती है। परन्तु यदि कर्तव्य-पालन के समय मन में फल की उत्कण्ठा बनी रहेगी तो मन में दुविधा उत्पन्न हो जाएगी और कर्तव्य के यथेष्ट पालन में बाधा होगी। कर्म का फल तुम्हारे हाथ में नहीं अतः फल का अपने को हेतु समझना मूर्खता होगी। इसके लिए एक दृष्टान्त लीजिए।

आप सरकारी दफ्तर में क्लर्क हैं। आपने पद को स्वीकार ही तब किया जब आपको निश्चित हो गया कि अमुक वेतन मिलेगा। परन्तु जब आप अपने काम में लगे तो 'वेतन' आपके चिन्तन क्षेत्र का विषय नहीं रहा। कार्यालय का कार्य ही एकमात्र चिन्तन का विषय है, वेतन आपके शासक के चिन्तन का विषय है। अतः जो सेवक सेवा का ध्यान छोड़कर हर घड़ी वेतन पर दृष्टि रखता है वह अपने पद का काम न करके अनेक भूलें करता है। क्योंकि वह कर्म का हेतु न होकर कर्मफल का हेतु बन जाता है। गीता में कहा है कि तेरा अकर्मों से सम्पर्क न होना चाहिए। कर्महीनता का नाम भी अकर्म है और उल्टे काम का नाम भी अकर्म है। (अकर्म= अकर्म= जो कर्म नहीं उसका करना। या जो कर्म है उसको न करना)।

कुछ लोगों ने इस मन्त्र के उल्टे ही अर्थ लगाए हैं। उनका कहना है कि इस मन्त्र में जिन कर्मों पर बल दिया गया है वह केवल मूर्खों के लिए है। जो ज्ञानी है उनके लिए तो कर्म की आवश्यकता ही नहीं रहती। श्री शंकराचार्य जी ईशोपनिषद् के भाष्य में लिखते हैं- ''अथ इतरस्यानात्मज्ञतया आत्मग्रहणाय अशक्तस्येदमुदपदिशति मन्त्रः कुर्वन्नेवेहेति।'' अर्थात् इस मन्त्र में केवल उन लोगों के लिए उपदेश है जो अनात्मज्ञ हैं अर्थात् जिनको आत्मज्ञान नहीं हुआ और जो अशक्त अर्थात् सामर्थ्ययहीन है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह निकला कि वेद में जहां कहीं कर्मों का गौरव दर्शाया गया है वह केवल मूर्ख अशक्तों के लिए है। जो विज्ञ हैं वह कर्मों की कर्तव्य से ऊपर हैं। इस पर शांकर मत में ज्ञान काण्ड को कर्मकाण्ड से पृथक् कर दिया गया और ब्रह्मज्ञों के मन में कर्म की अवहेलना बैठ गई। इसी मन्त्र की व्याख्या के अन्त में श्री शांकर भाष्य में एक प्रश्न उठाया है- कथं पुनरिदमवगम्यते पूर्वेण सन्यासिने ज्ञाननिष्ठोक्ता

क्रमशः.....७ पर

आगरा के सेन्ट पीटर्स चर्च में पहुचे महर्षि दयानन्द-फिर क्या हुआ?

संकलन : भावेश मेरजा

आर्य धर्म के उन्नायक स्वामी दयानन्द सरस्वती २७ नवम्बर १८८० को मेरठ से आगरा पहुंचे । यहां उन्होंने विभिन्न विषयों पर अनेक व्याख्यान दिए जिनकी एक सूची 'भारत सुदशा प्रवर्तृतक' के जनवरी १८८१ के अंक में प्रकाशित हुई थी । स्वामी के व्याख्यानों से उत्पन्न प्रभाव के परिणाम स्वरूप २६ दिसम्बर १८८० के दिन यहां आर्य समाज स्थापित हो गया ।

आगरा में एक दिन स्वामी ने ठाकुर श्यामलालसिंह के घर पर पधार कर उनके तीन पुत्रों का विधिवत् उपनयन संस्कार कराया । इस संस्कार को देखने के लिए एक यूरोपीय महिला भी आई थीं जो सम्भवतः रोमन कैथोलिक मिशनरी थीं ।

आगरा में रोमन कैथोलिक ईसाइयों का सेन्ट पीटर्स चर्च (गिरजाघर) प्रसिद्ध एवं दर्शनीय है । इस चर्च के अध्यक्ष लाट पादरी (बिशप) ने एक व्यक्ति को भेजकर स्वामी को सादर आमन्त्रित किया । अतः १२ दिसम्बर १८८० के दिन स्वामी मुन्शी गिरधारीलाल भार्गव आदि कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तिओं को साथ लेकर चर्च पहुंचे ।

स्वामी और चर्च के मुख्य पादरी (बिशप) प्रेम और सम्मान प्रदर्शन पूर्वक मिले और दोनों के बीच विभिन्न विषयों पर वार्तालाप हुआ ।

स्वामी ने प्रस्ताव रखा कि प्रथम सभी आस्तिक मत-पन्थ-मजहबों को एक मत होना चाहिए और तत्पश्चात् सभी को मिलकर नास्तिक विचारधारा का निरसन करने में प्रवृत्त होने की आवश्यकता है । स्वामी ने यह भी कहा कि इसके लिए जिन-जिन बातों में परस्पर विरोध है उन बातों को दूर करने के लिए सभी आस्तिक मतों के नेताओं तथा धर्माचार्यों को प्रथम एक सत्य मतस्थ होना चाहिए । स्वामी ने कहा कि गोरक्षा जैसे सर्वोपकारक कार्य में सब को मिलकर चलने की आवश्यकता है । पादरी स्वामी के इस सुझाव से पूर्णतः सहमत नहीं हुए । उनका कहना था कि सभी आस्तिक वर्गों का भी एक मत होना आसान नहीं लगता, क्योंकि मुसलमान और ईसाई लोग मांसाहार का त्याग करने के पक्ष में तैयार नहीं होंगे । ऐसे में जो लोग मांसाहार को त्याज्य समझते हैं और उससे घृणा करते हैं, उन लोगों से मुसलमान, ईसाई आदि का सामंजस्य कैसे स्थापित हो सकता है ?

पादरी ने स्वामी से एक अन्य बात कही : पादरी ने कहा कि जैसे महारानी विक्टोरिया लण्दन में रहते हुए भारत में स्थित अपने वायसराय के माध्यम से इस देश का शासन चलाती हैं, वैसे ही परमेश्वर अपने एकमात्र पुत्र और दूत ईसा मसीह के माध्यम से समस्त धरती पर अपने आदेशों का प्रवर्तृतन करता है । परमेश्वर भी बिना प्रभु ईसा मसीह के मनुष्यों के धार्मिक शासन और मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता है । स्वामी ने पादरी की इस बात का खण्डन किया । उन्होंने पादरी से कहा कि आपके द्वारा जो द्रष्टान्त दिया गया है उसमें दोष है । महाराणी विक्टोरिया की ईश्वर से क्या तुलना हो सकती है ? महाराणी तो एकदेशी, अल्पज्ञ, अल्प-शक्तिमान् हैं । अतः शासन चलाने जैसे महत् कार्य को कर पाने में वह अकेली असमर्थ हैं । इसलिए उन्हें अपने वायसराय आदि प्रतिनिधि एवं सहायकों की अपेक्षा रहती है । परन्तु परमेश्वर तो सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् है । अतः उसको अपने सृष्टि संचालन आदि कार्यों के लिए किसी अन्य की सहायता की बिल्कुल आवश्यकता नहीं रहती है । अपने समस्त कार्यों को करने में परमेश्वर स्वयं समर्थ है । स्वामी जी ने आगे कहा कि - यदि यह मान भी लिया जाए कि ईसा एक महात्मा थे तो भी यह कैसे मान लिया जाए कि ईसा की सिफारिश को मान्य कर परमेश्वर अन्याय करे और किसी पाप कर्तृता को उसके पाप का दण्ड न दे ? परमेश्वर तो न्यायकारी है, वह सब को कर्मानुसार यथायोग्य फल देता है । वह तो जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा फल अवश्य देगा।

आगे वेद के विषय में बात चली : बिशप के प्रश्न करने पर स्वामी ने कहा कि परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में अग्नि-वायु-आदित्य-अंगिरा इन चार ऋषियों के द्वारा वेदों का ज्ञान प्रकाशित किया । बिशप ने स्वामी से पूछा कि -इन चारों आदि ऋषियों के देहावसान के पश्चात् उनका उत्तराधिकारी कौन हुआ और आगे आगे उनके उत्तराधिकारी कौन होते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी ने कहा कि - सहस्रों-लाखों ऋषि-मुनि उन चार आदि ऋषियों के उत्तराधिकारी हुए । उदाहरण स्वरूप छः दर्शन, उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थ आदि के रचयिता ऋषि लोगों को उन चार आदि ऋषियों के उत्तराधिकारी के रूप में लिए जा सकते हैं । और सभी काल में जो भी व्यक्ति उन ऋषियों के द्वारा निर्दिष्ट वेदानुकूल जीवन पद्धति को अपनाएगा और तदनुसार अपनी दिनचर्या, व्यवहार आदि रखेगा उसे उन ऋषियों का उत्तराधिकारी माना जा सकता है । परन्तु आप मुझे यह बताइए कि ईसा के पश्चात् आपका यहां कौन प्रतिनिधि स्वरूप है ? बिशप ने कहा - रोम के पोप जो सबसे बड़े पादरी हैं उनको पृथ्वी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है । जो भूल या अपराध हम लोगों से होता है उसका सुधार पोप के द्वारा होता है । स्वामी ने पूछा - जो भूल या अपराध रोम के पोप से हो जाए उसका सुधार - संशोधन कौन करता है ? स्वामी ने रोम के पोपों के द्वारा की गई बुराइयों तथा मजहबी जिहाद (क्रूजेड) के नाम पर किए गए अत्याचारों का उल्लेख कर बिशप से कहा कि इन सब का मूल कारण तो स्वयं ये पोप रहे हैं, फिर वे लोग स्वयं क्या सुधार कर सकते हैं ? इसलिए यह बात तो हमारे पौराणिकों जैसी है। बिशप स्वामी की इस बात का कोई समुचित उत्तर न दे सके ।

इसी के साथ वार्तालाप समाप्त हुआ । स्वामी ने गिरजाघर का भव्य भवन देखने की इच्छा व्यक्त की । बिशप की अनुमति लेकर वे गिरजाघर के भीतरी भागों को देखने के लिए गए । परन्तु वहां पर नियुक्त प्रहरी ने पाश्चात्य शिष्टाचार तथा गिरजाघर की प्रथा के अनुसार स्वामी को पगड़ी उतार कर भीतर जाने के लिए कहा । स्वामी स्वदेश की सभ्यता और संस्कृति के प्रति दृढ़ आस्था और अनुराग रखने वाले थे । अतः चर्च के प्रहरी का यह आदेश उन्हें कैसे मान्य हो सकता था ? उन्होंने प्रहरी से कहा कि -हमारे देश में पगड़ी पहनना सम्मान या प्रतिष्ठा सूचक है । यदि आप चाहें तो मैं जूते उतार सकता हूं, परन्तु पगड़ी नहीं । परन्तु प्रहरी अपनी बात पर अड़ा रहा । इस पर स्वामी भी उपासना गृह के भीतरी बाग में प्रविष्ट नहीं हुए और बरामदे में रखी माता मरियम और ईसा की प्रतिमाएं देखकर चले आए। स्वदेशी संस्कृति और राष्ट्रीय आचार- विचार तथा के प्रति स्वामी के हृदय में कितनी दृढ़ आसक्ति और स्वाभिमान था इसका अनुमान इस घटना से किया जा सकता है ।

(सन्दर्भ ग्रन्थ : पण्डित लेखराम संगृहीत महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र, देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय संगृहीत महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित, डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' तथा मास्टर लक्ष्मण जी आर्योपदेशक कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती का सम्पूर्ण जीवनचरित।)

●●●

पृष्ठ.....६ का शेष.....

द्वितीयेन तदशक्तस्य कर्मनिष्ठेति।

अर्थात् यह कैसे ज्ञात हुआ कि पहले मन्त्र ''ईशावास्य'' से संन्यासी की ज्ञाननिष्ठा और दूसरे मन्त्र ''कुर्वेन्ने'' से ज्ञान की सामर्थ्य से अशक्त की कर्मनिष्ठा अभिप्रेत है? वस्तुतः यह प्रश्न तो समीचीन ही था कि वेद के इन दोनों मन्त्रों में से किसी शब्द से यह विदित नहीं होता कि पहला मन्त्र ज्ञानियों के लिए है और दूसरा अनात्मज्ञ के लिये। परन्तु भाष्यकार ने इसका यह उत्तर दिया है- ''उच्चयते ज्ञान कर्मणाविरोध पर्वत वादकम्पां यथोवतेन स्मरसि किम्।'' क्या तुम को हमारी यह बात याद नहीं रही कि ज्ञान और कर्म का परस्पर विरोध तो पहाड़ के समान अकम्प या अटल है। वस्तुतः यह शंका का समाधान नहीं समाधानाभास मात्र है। ज्ञान और कर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक हैं। ज्ञाननिष्ठ ही कर्मनिष्ठ हो सकता है। और ज्ञान निष्ठ ही ''माते संगोऽस्त्वकर्मणः'' का पालन कर सकता है। गीता के भक्त भी तो यही कहते हैं कि भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कर्म की भावना से मुक्त करने और कर्मनिष्ठ बनाने के लिए गीता का उपदेश किया था। जिनमें कर्म की निष्ठा है वह अज्ञानी नहीं है। जो ज्ञान से शून्य हैं वे कर्मनिष्ठ कैसे होंगे। भगवान् ने हमारे शरीर में ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां दोनों ही दी हैं। वे एक दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं और न उनका विरोध पर्वत के समान अटल है। जब ज्ञान और कर्म में पर्वत के समान अकम्प विरोध हो उठता है और मस्तिष्क तथा हाथ-पैर एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं तो इसको पागलपन की दशा ही कहते हैं। ज्ञान और कर्मेन्द्रियों का परस्पर विरोध केवल पागलों में मिलता है, ज्ञानियों में नहीं। इस प्रकार के निराधार और काल्पनिक भाष्य वैदिक संस्कृति के ह्रास के कारण ही सिद्ध हुए हैं। यह वेद मन्त्रों के आशय को न समझने अथवा कल्पित भावनाओं के अध्यारोप के कारण हुआ है। वस्तुतः यह वेदमन्त्र कर्म के गौरव को बताता है और स्पष्ट शब्दों में कहता है कि यथेष्ट कर्मों की इच्छा करके जीना और उन कर्मों का यथाविधि पालन करना सब कर्म के बन्धनों के छुटकारे का साधन होगा।

यहां एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिए। 'कर्मकाण्ड' के अर्थों में भी बहुत कुछ विकार हुआ है। श्री शंकर स्वामी के समय में कर्मकाण्ड का केवल यही अर्थ लिया जाता था कि यज्ञों के विषय में प्रचलित कुछ क्रियाएं करना, जैसे पात्र साफ करना, वेदी बनाना, अमुक मन्त्र पढ़कर चावल निकालना या पकाना या अमुक मन्त्र पढ़कर अमुक आहुति देना। यह कर्मकाण्ड का सम्भव है कि किसी अंश तक बाह्य रूप रहा हो परन्तु यह वास्तविक कमर्काण्ड नहीं है केवल हल को एक मन्त्र पढ़कर उठा लेने का नाम कृषि कर्म नहीं है और न व्यापार-सम्बन्धी किसी मन्त्र के पढ़ देने का नाम व्यापार है। कितनी समिधा कितनी बड़ी हो या कर्मकाण्ड नहीं। सम्भव है कि वेदनुयायी को ऐसे निरर्थक कृत्यों से बचाने के लिए शंकर स्वामी ने इस प्रकार के तर्कों का प्रयोग किया हो क्योंकि उस युग के कुमारिल भट्ट या मण्डन मिश्र आदि ऐसे ही कर्मकाण्ड के प्रचारक थे। और महात्मा बुद्ध आदि ने इसी जाल से मनुष्यों को सुरक्षित रखने के लिए वेदों का विरोध किया था। परन्तु यह तो कल्पित उपचार था जिसने एक रोग दूर करने के लिए दूसरा रोग उत्पन्न कर दिया। कर्म के जाल से छूटने के प्रयत्न में लोगों को नास्तिक बना दिया। कर्मकाण्ड के जाल से छूटे तो मायाजाल के शिकार हो गये। इससे कर्म का बन्धन तो नहीं छूटा। कर्म (वैदिक कर्म) अवश्य ही छूट गये। देश निरुद्यम हो गया। कर्म और ज्ञान के बीच अकम्प पर्वत खड़ा हो गया। परन्तु यह पर्वत भाष्यकारों की कल्पना का फल है। कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के बीच से इस व्यवधान को हटाने की आवश्यकता है और यह बात केवल यथेष्ट स्वाध्याय से ही पूरी हो सकती है।

(स्त्रोत- आर्ष क्रान्ति : आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र का जून २०१९ का अंक प्रस्तुति- प्रियांशु सेठ)

●●●

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र आर्यमित्र ११ अप्रैल २०२४ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

नवसंवत्सर व आर्य समाज स्थापना दिवस पर यज्ञ व गोष्ठी का हुआ आयोजन

जिला आर्य प्रतिनिधि सभा वाराणसी व काशी आर्य समाज के संयुक्त तत्वावधान में बुलानाला स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा १५ अप्रैल सन् १८८० में स्थापित आर्य समाज में राष्ट्र भृत्ति यज्ञ आचार्य पण्डित रामदेव शास्त्री व सत्येन्द्र आर्य के आचार्यत्व में व गोष्ठी का आयोजन हुआ । जिसमें विशिष्ट वक्ता नन्दलाल आर्य ने कहा कि महर्षि ने कोई नया मत या पंथ न बनाकर वेदों पर आधारित आर्य समाज का गठन कर सर्व प्रथम स्वतंत्रता की उद्घोषणा करते हुए सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का भरसक प्रयास किया । मुख्य वक्ता शम्भू नाथ शास्त्री ने कहा कि महर्षि दयानंद ने मानव हित हेतु आर्य समाज के दस नियमों को दिया। महर्षि दयानन्द के विचारों को वर्तमान सरकार भी आत्मसात कर रही है । कार्यक्रम की अध्यक्षता जिला सभा के प्रधान प्रमोद आर्य 'आर्षेय' ने किया । संचालन सत्येन्द्र आर्य ने किया । कार्यक्रम का संयोजन आचार्य पण्डित रामदेव शास्त्री ने किया । नवनिर्वाचित जिला सभा के दायित्वधारियों का स्वागत व अभिनन्दन काशी आर्य समाज के प्रधान रामाशंकर आर्य द्वारा किया गया ।

धन्यवाद ज्ञापन काशी आर्य समाज की मंत्राणी सरस्वती देवी जी ने दिया । इस कार्यक्रम में जिला सभा के मंत्री रवि प्रकाश आर्य व कोषाध्यक्ष प्रदीप आर्य सहित अन्य समाजों के सदस्य सीए विष्णु प्रसाद, अजीत कुमार, अखिलेश, वैभव कुमार, चन्द्रदीप, चन्द्रमा, चन्द्रपाल, अमरजीत, गोपालदास, उदय, आर्य रवि प्रकाश बरनवाल, राहुल एडवोकेट, संदीप पाण्डेय, अजय जायसवाल, वेद प्रकाश बृजवासी, गायत्री व अनीता आर्या आदि उपस्थित रहें ।

है भूयिष्ठ नमन हे महामानव!

परीक्षित मंडल 'प्रेमी'

जन गण मन में गूंज रही है दयानन्द की जय जयकार
कण कण में दिव्य ज्योति जगाती फैल रही है जय जयकार ।।
आओ मिलकर गीत सुनाएँ विमल जीवन गाथा पढ़ें पढ़ाएँ
रक्षक था जो मानवता का उसका हम दिव्य संदेश सुनाएँ ।।
महामानव था देवदूत वह सत्य ऋत का अनन्य पुजारी सत्य
शांति का प्रबल प्रसारक ऋषिवर सबका उपकारी ।।
ऋषिवर सबका हितकारी था आर्यसमाज का संस्थापक था
प्रणव प्राण का उन्नायक वह वेदामृत ज्ञान का प्रसारक था।।
प्रभु का सच्चा पुत्र दयानिधान प्रशस्त पथ दिखलाई ज्ञान की
मतभेदों में भटक रहे थे सिसक रहे थे चाह जगाई निर्वाण की।।
स्वस्तिप्रद पथ अमृत संदीप्त कर्म से देवत्व का किया प्रसार
ऋग्यजुः साम अथर्ववेद से ऋषि ने मतभेदों पर किया प्रहार।।
जगमग जगमग आलोक रश्मि से जागी तमसाच्छन्न
संसार कांप उठी भ्रांति जड़ता की गद्दी कांपा छलना का व्यापार ।।
अमृत ज्योति की किरणें जागी निष्कल्मष प्रज्ञा सौंदर्य जगा है
क्षमा धृति धर्म ज्ञान जगा भूले भटके मानव का भाग्य जगा है।।
ऋषि दयानंद तेरी गाथा से दलित जीवन में जयभाव जगे हैं
बुद्धि जाड्य का तिमिर दूर हुआ धर्म का जय गान जगे हैं।।
है भूयिष्ठ नमन तेरे पद्म पाद में ऋषिराज करो दुख दूर हमारे
कोटि प्रणाम हे महामानव ! हे युग परिवर्तक ! धर्म के रखवारे।।

झारखण्ड।
मो०-९१६२२०८००५

पृष्ठ.....५ का शेष.....

आरोग्य, बल और आयु

हर एक आर्य का धर्म है, कि अपने शरीर और इन्द्रियों की रक्षा और पालन-पोषण ऐसी सावधानी से करे, कि सदा स्वस्थ रहे, बलवान् और आयुष्मान् हो, और अपने जीवन में इस वैदिक आदर्श को प्रत्यक्ष दिखला सके कि-

वाङ्म आसन् नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाव्होर्बलम्।।१।।
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मना निश्रृष्टः।। -अथर्व० १९/६०

मेरे मुख में वाणी है (मुझमें अपने मन के भाव प्रकट करने की शक्ति है, और मुझे अपने भाव प्रकट करने में किसी का भय नहीं है) मेरे नथनों में प्राण है (मैं जीता जागता हूं, अतएव जीवन के लक्षण दिखला सकता हूं) मेरे नेत्रों में दृष्टि है और कानों में श्रुति है (मैं यथार्थ देखता हूं और यथार्थ सुनता हूं) मेरे बाल श्वेत नहीं हैं, मेरे दांत लाल नहीं हैं, (न उनसे रुधिर बहता है न मैले हैं) मेरी भुजाओं में बड़ा बल है।।

मेरी रानों में शक्ति है, और मेरी जंघों में वेग है, मेरे दोनों पाओं में दृढ़ खड़ा होने की शक्ति है (मैं इस जीवन संग्राम में अपने पाओं पर खड़ा हूं, और उठकर खड़ा हूं) मेरे सारे अंग पूर्ण और नीरोग है, मेरा आत्मा परिपक्व है (बलवान् और तेजस्वी) है।

तनूस्तन्वां मे भवेदन्तः सर्वमायु रशीय।
स्योन मासीद पुरु पृणस्व पवमानः स्वर्गे।। -अथर्व० १९/६१

मेरे शरीर के अन्दर फैलने वाली शक्ति हो, मैं पूर्ण आयु भोगूँ। (इसलिए हे मेरे आत्मा) तू स्वर्ग में अपने आपको पवित्र करता हुआ अनुकूल स्थान में बैठ और अपने आपको सर्वांग में पूर्ण बना।

आरोग्य बल और आयु के लिए प्रार्थनाएं (अर्थात् ईश्वर से सहायता मांगना)

तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाह्या युर्दा अग्ने स्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेसि वर्चो मे देहि।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण।। -यजु० ३/१७

हे अग्ने! तू शरीर का रक्षक है, मेरे शरीर की रक्षा कर हे अग्ने! तू आयु का देनेवाला है, मुझे आयु दे, हे अग्ने तू कान्ति का देनेवाला है, मुझे कान्ति दे, हे अग्ने जो मेरे शरीर की न्यूनता है, वह मेरी पूर्ण कर दे।

तेजोसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्य मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहो सि सहो मयि धेहि। -यजु० १९।९

तू तेज है, मुझमें तेज स्थापन कर। तू शक्ति है, मुझमें शक्ति स्थापन कर। तू बल है, मुझमें बल स्थापन कर। तू ओज (प्रयत्न शक्ति) है, मुझमें ओज स्थापन कर। तू मन्यु है, मुझमें मन्यु स्थापित कर। तू सहनशक्ति है, मुझमें सहनशक्ति स्थापित कर।

सो प्रत्येक आर्य का धर्म है, कि शौच-स्नान, रहन-सहन, खान-पान सब ऐसा रक्खें, जिससे उसका स्वास्थ्य शक्ति और आयु बढ़े। विशेषतः व्यायामशील हो क्योंकि-

लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तघनगात्रता। दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते।।१।।
व्यायाम दृढ़ गात्रस्य व्याधिर्नास्तिकदाचन। विरुद्धं वा विदग्धं वा भक्तं शीघ्रं विपच्यते।।२।।
भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः। नचौनं सहसा क्रम्य जरा समधिरोहति।।३।।

व्यायाम से शरीर हल्का होता है काम करने की शक्ति बढ़ती है, अलग-अलग सारे अंग पीन (पीडे) हो जाते हैं, (कफ आदि) दोष दूर होते हैं, और जठारग्नि बढ़ता है।।१।।

व्यायाम से दृढ़ अंगों वाले को रोग नहीं दबाता, विरुद्ध वा अधकच्चा भोजन भी शीघ्र पच जाता है।।२।।

इससे शरीर में शिथिलता आदि जल्दी नहीं होते, और न बुढ़ापा उसको दबाकर सवार होता है।।३।।

व्यायाम से अभिप्राय शारीरिक परिश्रम के हर एक कार्य से है। निरा दण्ड आदि का ही नाम नहीं। व्यायाम सबसे उत्तम वही है, जो घर के काम काज में होता है, इसलिए घर के काम काज में लज्जा कभी नहीं करनी चाहिए।

बुद्धिबल- यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्यमे धयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।। -यजु० ३२/१४

जिस मेधा को देवगण और पितर सेवन करते हैं, उस मेधा से हे अग्ने मुझे मेधावी बना।

चरित्र बल- परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वामा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु।। -यजु० ४/२८

हे अग्ने मुझे दुश्चरित से सदा बचाते रहो, और सुचरित में सदा चलाते रहो, जिससे कि मैं उच्च जीवन और पवित्र जीवन के साथ देवताओं की ओर उठूं।

साभार- तपोभूमि मासिक

पृष्ठ.....३ का शेष.....

गुरुदेव का चित्र सा आ जाता है और वे चाहते हैं कि गुरुदेव हमेशा उनके अंगसंग रहें। गुरु से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तु में भी एक विशेष भक्ति का भाव पैदा हो जाता है। ऋषि दयानन्द के जीवन में यह बात जगह-जगह पर उल्लिखित है। हम केवल दो उदाहरणों का उल्लेख करेंगे-

ऋषि की सेवा में ईश्वरानन्द सरस्वती का एक पत्र मिलता है जिसमें लिखा है-

मेरे पर भगवचरणों की धूरी स्वप्न में वर्षी है सो मैंने खूब स्नान किया।(पत्र व्यवहार पृ २द्व)

जोशी लालजी कल्याणजी एक पत्र में लिखते हैं-

आपके हस्ताक्षर कुं बोहोत प्रेम में दण्डवत किया। (पत्र व्यवहार पृ २९५)

ऋषि के प्रति राजस्थान के राजाओं, उच्च अधिकारियों तथा सर्वसाधारण-यहाँ तक कि एक पापताप से सन्तप्त दुखिया देवी के भाव अत्यन्त भक्तिपूर्ण थे। यह बात मैं ऋषि के पत्र व्यवहार की ही साक्षी से "आर्य" की किसी पूर्व संख्या में सिद्ध कर चुका हूँ।

मेरे इस लेख का प्रयोजन केवल यह दिखाना है कि ऋषि दयानन्द सचमुच ऋषि थे, उन्होंने आध्यात्मिक अनुभूति तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उसी अनुभूति का चमत्कार उनका निष्कलंक सच्चरित्र-सम्पन्न जीवन था। उनकी सर्वस्व स्वाहा करने वाली असीम परोपकार की प्रवृत्ति, उनके प्राणिमात्र के लिए उन्नत दयाभावे, उनका जगत् के उद्धारार्थ अनथक अविरल परिश्रम, आपत्तियों की उमड़ रही बाढ़ के सामने उनकी अदम्य अटल धैर्य, अपने उद्देश्य की सफलता में उनका निरपेक्ष विश्वास, ये सब उसी एक अनुभूति के परिणाम थे।

ऋषि ब्रह्म का ध्यान करते-करते ब्रह्ममय हो गये थे। उनसे ब्रह्म अलग न था। वे ब्रह्म में रम रहे थे और ब्रह्म उनमें । कहने को तो उन्होंने ब्रह्मानन्द को छोड़कर परोपकार का कार्य आरम्भ किया था, परन्तु ब्रह्मानन्द ने एक क्षण भी उनका पल्ला नहीं छोड़ा।

किसी भक्त के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने स्वयं भी तो यही कहा था कि यह महान् कार्य मैं बिना किसी योग सिद्धि के नहीं कर रहा हूँ। ऋषि का योग की सिद्धि उनका आत्मदर्शन था।

●●●

स्वामी-आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक-पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5-मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है-सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।